# हे भानमती

मणि मधुकर

# हैमानमती





सरस्वती विहार

अपने प्रिय मित्र
डॉ० मगनलाल मोहता के हाथों में
सस्नेह

## क्रम

# एक बांह कटी हुई

कैर और कंकेड़ों के घने गाछ आपस में उलझे हुए हिल रहे थे। तीसरे पहर की धूप में हवा अचानक तेज और भारी हो उठी थी। आक की पतली सोटियों और खींप की बुनावट में गुंथी हुई छाजन के नीचे दो कोठे थे। पहला कोठा आगे को खुला हुआ, जिसमें चूल्हा, बरतन और मूढे पड़े रहते थे। दूसरा कोठा अंदर था, किवाड़ों वाला। उसकी छत ढाल में जाकर संकरी हो गयी थी। चूल्हे से कुछ हटकर काठ के लट्ठों का ढेर लगा था।

सामने कच्ची सड़क थी—सफेद कंकर-मिट्टी से सनी हुई। दिन में दो बार बस उसपर से गुजरती थी। ट्रक भी आते-जाते थे। लद्दू ऊंटों और बैलगाड़ियों के लिए तो वह आसान, सुरक्षित मार्ग था ही। दो कोठों वाली छाजन थके-मादे लोगों को 'विसराम' की घड़िया देती थी।

चौतरफा बालू का मैदान था। कहीं भूरा, कहीं रंगे हुए रेवड़ की तरह कुछ-कुछ लाल। टेकड़ियां ऐसी मानो आदमकद पहाड़ियां नींद में सोयी हों। इस नींद में खलल डालता हुआ एक हिरन फोग की डालियों के बीच छलांग लगा गया।

"रुको!" स्त्री ने शुष्क कंठ से पुकारा और दौड़कर आगे चलते हुए पुरुष से सट गयी, "मुझे डर लग रहा है!"

पगडंडी सड़क से मिल गयी थी और वहां वे दोनों एक-दूसरे को

थामे खड़े थे।

"सायर !" पुरुष के स्वर में परेशानी थी, "तुम्हें अपने पर काबू रखना चाहिए।"

"मैं थक गयी हूं।"

"वो छाजन नजर आ रही है न, हम वहां बैठकर थकान मिटा सकेंगे।" पुरुष का रुख मुलायम पड़ा, "तुम्हें भूख भी लग गयी होगी।"

"नहीं, मुझे भूख नहीं है। मैं सोना चाहती हूं।"

"बस के आने तक तुम्हें सोने का वक्त मिल जाएगा।"

"क्या हमें इंतजार करना होगा, वली ?"

"हां, कुछ देर।" वली ने उसका हाथ पकड़ा और छाजन की ओ चल पड़ा। यह कितना मजबूत है ! सायर ने ते पांवों से स्व

"ले आओ। मैं तो दाल-बाटी का स्वाद ही भूल गया हूं।"

"तुम्हें हमेशा नया स्वाद चाहिए।"

गोंठवाली ने पीतल की थाली मे बाटियां परोस दी।

"तुम भी कुछ खा लो," उसने सायर से कहा।

सायर ने कोई जवाब नही दिया। वह सो गयी थी।

"यह थक गयी है," बली ने चूरमे से मुंह भरते हुए कहा।

गोंठवाली मिट्टी के कुल्हड़ मे इमली का पना भर लायी और उसे थाली के पास रख दिया।

"अभी छोटी है," उसने कहा।

"हां, पर इसका ब्याह हो गया है। धणी ओसियां रहता है। इस्कूल पढ़ाता है।"

"यह उसके साथ क्यों नहीं रहती?"

"तनखा कम है उसकी। इसको खिलाएगा तो खुद भूखा रहेगा।"

"अब तुम यह धंधा छोड दो।"

"मेरी मां भी यही कहा करती थी," कहकर बली बाल्टी के पास ...र लोटे में पानी लेकर कुल्ले करने लगा।

"[illegible] कहां है?"

थामे खड़े थे।

"सायर !" पुरुष के स्वर में परेशानी थी, "तुम्हें अपने पर काबू रखना चाहिए।"

"मैं थक गयी हूं।"

"वो छाजन नजर आ रही है न, हम वहां बैठकर थकान मिटा सकेंगे।" पुरुष का रुख मुलायम पड़ा, "तुम्हें भूख भी लग गयी होगी।"

"नहीं, मुझे भूख नहीं है। मैं सोना चाहती हूं।"

"बस के आने तक तुम्हें सोने का वक्त मिल जाएगा।"

"क्या हमें इंतजार करना होगा, वली ?"

"हां, कुछ देर।" वली ने उसका हाथ पकड़ा और छाजन की ओर चल पड़ा। यह कितना मजबूत है ! सायर ने लड़खड़ाते पांवों से स्वयं को वली के संग-संग धकेलते हुए सोचा।

"गोंठवाली !" छाजन के सामने खड़े होकर वली ने आवाज दी।

सायर छांह में मूढ़े पर बैठ गयी। पल्लू से चेहरे का पसीना पोंछा। फिर वली की ओर देखने लगी।

अंदर के कोठे का एक किवाड़ खोलकर गोंठवाली बाहर आयी। तीखे नाक-नक्श। गोरा रंग। उमर की ढलान में उतरती हुई वह औरत, जाने किस चीज से ऊबी हुई और उदास लगती थी। होंठ हिलने पर उदासी की परतें बिखर गयीं, "तुम फिर आ गए ?"

उसका मंझोला कद सख्त ढंग से वली के सामने तन गया।

"कोई और काम नहीं कर सकते तुम ?" गोंठवाली के उपरले होंठ पर उगे हुए रोएं कस गए, "निकम्मे !"

सायर घबराकर दूसरी तरफ देखने लगी।

"भई, ठीक है।" वली जबरन मुस्करा रहा था, "मैं तुम्हारे लिए 'अम्मल' लाया हूं। खास मेवाड़ी अम्मल।"

गोंठवाली की एक ही कमजोरी थी—अफीम। उसने पूछा, "कुछ खाओगे ?"

"हां, पेट बिलकुल खाली है।"

"दाल-बाटी है। इमली का पना भी।"

"ले आओ। मैं तो दाल-बाटी का स्वाद ही भूल गया हूं।"

"तुम्हें हमेशा नया स्वाद चाहिए।"

गोंठवाली ने पीतल की थाली में बाटियां परोस दीं।

"तुम भी कुछ खा लो," उसने सायर से कहा।

सायर ने कोई जवाब नहीं दिया। वह सो गयी थी।

"यह थक गयी है," वली ने चूरमे से मुंह भरते हुए कहा।

गोंठवाली मिट्टी के कुल्हड़ में इमली का पना भर लायी और उसे थाली के पास रख दिया।

"अभी छोटी है," उसने कहा।

"हां, पर इसका ब्याह हो गया है। धणी ओसियां रहता है। इस्कूल में चपरासी है।"

"यह उसके साथ क्यों नहीं रहती ?"

"तनखा कम है उसकी। इसको खिलाएगा तो खुद भूखा रहेगा।"

"अब तुम यह धंधा छोड़ दो।"

"मेरी मां भी यही कहा करती थी," कहकर वली बाल्टी के पास गया और लोटे में पानी लेकर कुल्ले करने लगा।

"अम्मल कहां है ?"

वली ने कमरबंद में से एक गांठ निकाली और गोंठवाली के हाथ में थमा दी, "एक जौ-भर दाना मुझे भी दे दो।"

गोंठवाली ने डांट दिया, "तुमसे अम्मल सहा नहीं जाता। पिछली बार तुमने बड़ा उत्पात मचाया था।"

वली ने कसकर जमुहाई ली, "तो मैं भी अब एक नींद ले लूं।"

"अंदर कोठे में चले जाओ।"

"तुम नहीं चलोगी ?"

"शरम करो, कीड़े !" गोंठवाली की त्योरियां चढ़ गयीं। वली भीतर कोठे में चला गया। उसने किवाड़ भिड़ा लिए।

शाम के बाद का धुआंसा उतरने लगा था। गोंठवाली ने परात में पीपा औंधा किया और पानी का डबला लेकर आटा गूंथने बैठ गयी।

"वह कहां है...वली ?"

गोंठवाली ने सिर ऊपर किया। स्त्री की अलसायी गोल आंखों को देखा। लगा, उसके भीतर अचानक कुछ गलत और खोखला होकर फंस गया है। बोली, "वली अंदर है···तुम्हें क्या कहते हैं?"

"सायर!" छोटा-सा उत्तर।

"किस गांव की हो?"

चुप्पी। सिर्फ चूल्हे के घर में आग की मंद आवाज थी।

"बतला दो। मैं सब जानती हूं···"

"किसी से कहोगी तो नहीं?" सायर के संकोच में भय था।

"मुझपर भरोसा करो।"

"नाडियावास।"

"मैं गोंठ की हूं।"

सायर चौंकी, "गोंठ हमसे डेढ़ कोस पूरब में है।"

"हां, नाडियावास और गोंठ के बीच एक ही कुआं है।···मैं तेरह की थी, जब मेरा मुकलावा हुआ। गोंठ के लड़के बहुओं को छेड़ने-चिढ़ाने में अव्वल थे। उस समय मैं कुछ तुतलाती थी। आदत पड़ गयी थी। वे तोते पकड़कर मेरी चुनड़ी में बांध देते थे।"

गोंठवाली हंस पड़ी। बाटियों के सिकने की गंध हवा में उड़ने लगी थी। अंधेरा पसरने लग गया था।

"तुम यहां क्यों आ गयीं?" सायर गोंठवाली के पास बैठ गयी।

"मेरा धणी मर गया।"

सायर कांप गयी। उसे अपने प्रश्न पर दुःख होने लगा।

"तुम यहां अकेली रहती हो?"

"हां, जब तक दूसरा न मिल जाए!"

"डर नहीं लगता?"

"कभी-कभी लगता है—अपने से!"

गोंठवाली ने कुछ क्षण रुककर पूछा, "तुम वली को बहुत चाहती हो?"

सायर ने 'हां' भरी।

"तुम्हारे धणी में क्या खराबी है?"

"वह मुझे पीटता है।"
"देखने मे कैसा है?"
"बुरा नहीं है।"
"बली के जोड़ का है?"
"नहीं। बली असल मर्द है। औरत का मान रखनेवाला।"
"बली तुम्हें आग में कूदने के लिए कहे तो तुम कूद जाओगी?"
"कूद जाऊंगी।"
"वह तुम्हें दूसरे आदमी के साथ सोने के लिए कहे तो—"
"तुम मुझसे ऐसे गंदे सवाल न करो।"
"अगर बली खुद दूसरी औरतों के साथ कुछ करे तो तुम करने दोगी?"
"वह इतना गिरा हुआ नहीं है।" सायर का स्वर कटु हो गया।
"तुम मेरी बात पर बिसवास करोगी? वह मेरे साथ सो चुका है। दो-तीन बार। शायद ज्यादा···ठीक याद नहीं।"
"चुड़ैल!" सायर ने गोठवाली के मुंह पर थप्पड़ जमा दिया। फिर उठकर छाजन के बाहर चली गयी।

अंधेरा। अंधेरा और अंधेरा। सूखा। शरीर को नोचता हुआ। सड़क उसमें गुम हो गयी थी।

सन्नाटा। मुतहा सन्नाटा।
सायर की आंखों में आंसू उमड़ आये। दीवार के सहारे टिकी हुई उसकी देह सिसकियों से हिलने लगी। वह क्या करे? क्या बली से पूछकर सही-सही जान ले?
कोई तीखी धार—छुरी-जैसी—उसकी आंखों को काट रही थी।
"नहीं, मैं उससे नहीं पूछ सकूंगी," सायर बुदबुदायी, "बली नाराज हो सकता है। वह मुझे कुछ नहीं बताएगा।"
अचानक ही एक भारी निरर्थकता ने उसे दबोच लिया। वह उसके शिकजे-तले छटपटा रही थी। अपने आपको इस तनाव से मुक्त करने

में असमर्थ हू-हू करती हवा की वेकली को तोड़ता हुआ चांद गज़-भर ऊपर उठ आया था। और उसके मटमैले उजाले में रात की एकरसता अधिक तकलीफदेह हो उठी।

सायर के भीतर कई आवाज़ें उमड़कर खो गयीं। वह कुछ वोल रही थी, पर उसे अपने ही शब्द सुनायी नहीं दे रहे थे।

जाने कैसे, जाने क्यों, सायर ने कुछ देर वाद स्वयं को अंदर के कोठे में पाया। आलेनुमा खिड़की से चांदनी का एक भद्दा-सा टुकड़ा फर्श पर आ गिरा था। वली घुटने मोड़े सो रहा था। कुहनी के नीचे दवी हुई उसकी नाक विचित्र ढंग से वज रही थी।

सायर खाट की पाटी पर वैठ गयी। उसने वली के पुट्ठे पर हाथ रखा, पुकारा, "उठो, यहां से चलो।"

वली उसी तरह नींद में गहरी-गहरी सांसें लेता रहा।

सहसा सायर ने महसूस किया कि उसके मुंह से आवाज नहीं निकल रही है। होंठ वुरी तरह चिपक गए थे और दांतों से सटी हुई जीभ छिपकली की कटी पूंछ की भांति तड़प रही थी।

घृणा से सायर का चेहरा विकृत हो गया। वह रोती हुई वाहर आ गयी। चरवाहे जा चुके थे। धूल-भरी हवा सवको रौंद रही थी।

"तुम्हें क्या हो गया है?" गोंठवाली ने पास आकर उसे डांटा।

"मैं वली की जान ले लूंगी," सायर चिल्लायी, "वह मुझे यहां क्यों लाया?"

"मुंह वंद रखो," गोंठवाली का स्वर भी ऊंचा हो गया।

"मैं वापस जाना चाहती हूं।"

"जाओ, वह रास्ता पड़ा है।"

सायर की सांस रुक-सी गयी। उसने अपनी जलती हुई आंखें गोंठवाली के चेहरे पर टिका दीं। वहां कुछ नहीं था—एक भरपूर छल के सिवा।

"तुमने मुझसे छल किया है।" सायर ने झपटकर गोंठवाली का गला पकड़ लिया और उसे नीचे गिरा दिया। एक तेज आंधी फनफना रही थी, "तुम कमीनी औरत! तुमने वली को मुझसे छीन लिया।"

गोंठवाली हमले के लिए तैयार नही थी। उसने छूटने की कोशिश की, पर पकड़ मानो लोहे के तारों से बटी हुई थी।

सायर प्रतिशोध मे अंधी हो चुकी थी। उसे नही मालूम था कि वह क्या कर रही है, क्या करना चाह रही है। भूसे की पोट की तरह उसने गोंठवाली को उठाकर परे फेंक दिया। गोंठवाली का सिर लट्ठों से जाकर लगा। बायां हाथ लट्ठे चीरने वाली आरी पर आ गया। सायर उसपर चढ़ गयी। उसने हाथ को आरी पर जोर से दबा दिया। बांह कट गयी। आर-पार। इससे पहले कि गोंठवाली के मुह से चीख निकले, सायर ने उसका जबड़ा भींच दिया।

"यह मैंने क्या किया ?" एक हल्की-सी भभक के रूप में यह भाव उसके माथे में कौंध गया और वह वेग से भागने लगी। बदहवास ! भयभीत ! तारों का एक झुंड उसके साथ-साथ दौड़ रहा था। आखिर वह हाफने लगी। पांवो से उसका बोझ नही सभला और वह गोली खाये खरगोश की तरह गिर गयी।

कुछ देर बाद पास से एक बैलगाड़ी निकली। सायर ने बडी मुश्किल से मुंदती हुई आंखें खोली, ताकत जुटाकर खड़ी हुई और मरे-बुझे ढंग से चीखकर बोली, "मुझे ले चलो···यहां से ले चलो।"

उसने फिर गाड़ीवान का धुंधला-सा चेहरा देखा और बेहोश हो गयी।

कई बरस बाद मैं—वह गाड़ीवान, फिर उस कच्ची सड़क पर से गुजरा। गाड़ी सूती-ऊनी-रेशमी कपड़ो से लदी थी। नयी डिजाइन के कुरते, अंगरखे, काचली, झबले और कशीदे के काम वाले दुपट्टे। गाव-ढाणियों में अटकता-भटकता मैं, उन्हें पूरा मुनाफा लेकर बेच रहा था और ग्राहक को हर तरह से फासने मे विश्वास रखता था। स्त्रियों से भाव-ताव में सायर की मदद मिल जाती थी। वैसे उसका ज्यादा समय अपने तीनों बच्चो को संभालने मे बीतता था।

सिखर-दुपहरी को गाड़ी उस छाजन के सामने रुकी। सबसे बड़ा बच्चा, बिरदू, मेरा कंधा छूकर बोला, "बाउ, देखो, एक हाथ वाली

औरत !"

सायर के चेहरे पर आतंक खिच गया । उसने मेरी बांह पकड़ ली, "गाड़ी यहां मत रोको । जल्दी से आगे चलो ।"

"घबराओ मत !" मैंने कहा और बैलों का जुआ ढीला कर दिया ।

छाजन के नीचे एक आदमी पट्टे पर बैठा गुड़गुड़ी पी रहा था । गाड़ी को रुकते देख वह जोर से बोला, "ऐ गोंठवाली, इन लोगों से पूछा, क्या लेंगे ?"

औरत, जो बाहर वाला कोठा बुहार रही थी, चिल्लायी, "क्या गे, गाड़ीवान ?"

"बच्चों के लिए कुछ चाहिए," मैंने गाड़ी पर खड़े होकर कहा ।

"मीठी रोटियां हैं, मक्का की । दूं ?"

"ले आओ ।"

सायर ने औरत को अपनी ओर आते देखा तो पीठ फेर ली और ओढ़नी का पल्ला माथे पर झुका लिया ।

विरदू ने लपककर रोटियां ले लीं, फिर पूछने लगा, "तुम्हारा एक हाथ कहां गया ?"

"कौआ लेकर उड़ गया !" औरत हंसी ।

विरदू खुश हो ताली बजाने लगा ।

"कितनी हैं ?" मैंने पूछा ।

"आठ । एक रुपया हो गया ।" औरत ने कहा, "भुने हुए आलू हैं । प्याज की चटनी है । दूं क्या ?"

"नहीं," मैंने उसकी ओर नोट बढ़ा दिया और गाड़ी हांकने लगा ।

औरत ने नोट खोंसा और लौट गयी ।

"गुड़गुड़ी में तम्बाकू और डाल !" छाजन के नीचे से आदमी ने आवाज दी ।

सायर मुझसे सट गयी और धीमे-से बोली, "वह वली है—मैंने तुम्हें तब बताया था न !"

"मैं उसे जानता हूं ।" मेरे मन में किसी चीज की कोई उत्कंठा नहीं थी ।

सायर ने बुदबुदाते हुए दांत पीसे, "गोंठवाली, मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूंगी···तुमने वली को मुझसे छीन लिया।" फिर उसने विरदू के हाथों में रोटियां झपटकर धूल में फेंक दीं, "इन्हें मत खाओ।"

मैं गाड़ी हांकता रहा। नहीं, मुझ में ईर्ष्या नहीं थी। सायर से यह कहना व्यर्थ था कि शुरू में मैंने और वली ने साझे में औरतें भगाने का धंधा चलाया था। अब तो शायद वह भी इस बात को भूल गया होगा। □

औरत !"

सायर के चेहरे पर आतंक खिंच गया। उसने मेरी बांह पकड़ ली, "गाड़ी यहां मत रोको। जल्दी से आगे चलो।"

"घबराओ मत !" मैंने कहा और बैलों का जुआ ढीला कर दिया।

छाजन के नीचे एक आदमी पट्टे पर बैठा गुड़गुड़ी पी रहा था। गाड़ी को रुकते देख वह जोर से बोला, "ऐ गोंठवाली, इन लोगों से पूछ, क्या लेंगे ?"

औरत, जो बाहर वाला कोठा बुहार रही थी, चिल्लायी, "क्या लोगे, गाड़ीवान ?"

"बच्चों के लिए कुछ चाहिए," मैंने गाड़ी पर खड़े होकर कहा।

"मीठी रोटियां हैं, मक्का की। दूं ?"

"ले आओ।"

सायर ने औरत को अपनी ओर आते देखा तो पीठ फेर ली और ओढ़नी का पल्ला माथे पर झुका लिया।

बिरदू ने लपककर रोटियां ले लीं, फिर पूछने लगा, "तुम्हारा एक हाथ कहां गया ?"

"कौआ लेकर उड़ गया !" औरत हंसी।

बिरदू खुश हो ताली बजाने लगा।

"कितनी हैं ?" मैंने पूछा।

"आठ। एक रुपया हो गया।" औरत ने कहा, "भुने हुए आलू हैं। प्याज की चटनी है। दूं क्या ?"

"नहीं," मैंने उसकी ओर नोट बढ़ा दिया और गाड़ी हांकने लगा।

औरत ने नोट खोंसा और लौट गयी।

"गुड़गुड़ी में तम्बाकू और डाल !" छाजन के नीचे से आदमी ने आवाज दी।

सायर मुझसे सट गयी और धीमे-से बोली, "वह वली है—मैंने तुम्हें तब बताया था न !"

"मैं उसे जानता हूं।" मेरे मन में किसी चीज की कोई उत्कंठा नहीं थी।

सायर ने बुदबुदाते हुए दांत पीसे, "गोंठवाली, मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूंगी'''तुमने वली को मुझसे छीन लिया।" फिर उसने बिरदू के हाथों में रोटियां झपटकर धूल में फेंक दीं, "इन्हें मत खाओ।"

मैं गाड़ी हांकता रहा। नहीं, मुझ में ईर्ष्या नहीं थी। सायर से यह कहना व्यर्थ था कि शुरू में मैंने और वली ने साझे में औरतें भगाने का धंधा चलाया था। अब तो शायद वह भी इस बात को भूल गया होगा। □

औरत !"

सायर के चेहरे पर आतंक खिंच गया। उसने मेरी बांह पकड़ ली, "गाड़ी यहां मत रोको। जल्दी से आगे चलो।"

"घबराओ मत !" मैंने कहा और बैलों का जुआ ढीला कर दिया।

छाजन के नीचे एक आदमी पट्टे पर बैठा गुड़गुड़ी पी रहा था। गाड़ी को रुकते देख वह जोर से बोला, "ऐ गोंठवाली, इन लोगों से पूछा, क्या लेंगे ?"

औरत, जो बाहर वाला कोठा बुहार रही थी, चिल्लायी, "क्या लोगे, गाड़ीवान ?"

"बच्चों के लिए कुछ चाहिए," मैंने गाड़ी पर खड़े होकर कहा।

"मीठी रोटियां हैं, मक्का की। दूं ?"

"ले आओ।"

सायर ने औरत को अपनी ओर आते देखा तो पीठ फेर ली और ओढ़नी का पल्ला माथे पर झुका लिया।

बिरदू ने लपककर रोटियां ले लीं, फिर पूछने लगा, "तुम्हारा एक हाथ कहां गया ?"

"कौआ लेकर उड़ गया !" औरत हंसी।

बिरदू खुश हो ताली बजाने लगा।

"कितनी हैं ?" मैंने पूछा।

"आठ। एक रुपया हो गया।" औरत ने कहा, "भुने हुए आलू हैं। प्याज की चटनी है। दूं क्या ?"

"नहीं," मैंने उसकी ओर नोट बढ़ा दिया और गाड़ी हांकने लगा।

औरत ने नोट खोंसा और लौट गयी।

"गुड़गुड़ी में तम्बाकू और डाल !" छाजन के नीचे से आदमी ने आवाज दी।

सायर मुझसे सट गयी और धीमे-से बोली, "वह बली है—मैंने तुम्हें तब बताया था न !"

"मैं उसे जानता हूं।" मेरे मन में किसी चीज की कोई उत्कंठा नहीं थी।

सायर ने बुदबुदाते हुए दात पीसे, "गोंठवाली, मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूगी···तुमने वली को मुझसे छीन लिया।" फिर उसने बिरदू के हाथों मे रोटियां झपटकर धूल मे फेंक दी, "इन्हें मत खाओ।"

मैं गाड़ी हांकता रहा। नहीं, मुझ मे ईर्ष्या नहीं थी। सायर से यह कहना व्यर्थ था कि शुरू मे मैंने और वली ने साझे मे औरतें भगाने का धंधा चलाया था। अब तो शायद वह भी इस बात को भूल गया होगा। □

औरत !"

सायर के चेहरे पर आतंक खिच गया। उसने मेरी बांह पकड़ ली, "गाड़ी यहां मत रोको। जल्दी से आगे चलो।"

"घबराओ मत !" मैंने कहा और बैलों का जुआ ढीला कर दिया।

छाजन के नीचे एक आदमी पट्टे पर बैठा गुड़गुड़ी पी रहा था। गाड़ी को रुकते देख वह जोर से बोला, "ऐ गोंठवाली, इन लोगों से पूछा, क्या लेंगे ?"

औरत, जो बाहर वाला कोठा बुहार रही थी, चिल्लायी, "क्या लोगे, गाड़ीवान ?"

"बच्चों के लिए कुछ चाहिए," मैंने गाड़ी पर खड़े होकर कहा।

"मीठी रोटियां हैं, मक्का की। दूं ?"

"ले आओ।"

सायर ने औरत को अपनी ओर आते देखा तो पीठ फेर ली और ओढ़नी का पल्ला माथे पर झुका लिया।

बिरदू ने लपककर रोटियां ले लीं, फिर पूछने लगा, "तुम्हारा एक हाथ कहां गया ?"

"कौआ लेकर उड़ गया !" औरत हंसी।

बिरदू खुश हो ताली बजाने लगा।

"कितनी हैं ?" मैंने पूछा।

"आठ। एक रुपया हो गया।" औरत ने कहा, "भुने हुए आलू हैं। प्याज की चटनी है। दूं क्या ?"

"नहीं," मैंने उसकी ओर नोट बढ़ा दिया और गाड़ी हांकने लगा।

औरत ने नोट खोंसा और लौट गयी।

"गुड़गुड़ी में तम्वाकू और डाल !" छाजन के नीचे से आदमी ने आवाज दी।

सायर मुझसे सट गयी और धीमे-से बोली, "वह बली है—मैंने तुम्हें तब बताया था न !"

"मैं उसे जानता हूं।" मेरे मन में किसी चीज की कोई उत्कंठा नहीं थी।

सायर ने बुदबुदाते हुए दांत पीसे, "गोंठवाली, मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूंगी···तुमने वली को मुझसे छीन लिया।" फिर उसने बिरदू के हाथों में रोटियां *झपटकर धूल में फेंक दीं, "इन्हें मत खाओ।"*

मैं गाड़ी हांकता रहा। नहीं, मुझ में ईर्ष्या नहीं थी। सायर से यह कहना व्यर्थ था कि शुरू में मैंने और वली ने साझे में औरतें भगाने का धंधा चलाया था। अब तो शायद वह भी इस बात को भूल गया होगा। □

# अंतिम संस्कार

छपरे और फिर चूने-सुरखी के कच्चे आंगन से निकल कर जब वह बाहर गुवाड़ी में आया तो तीसरे पहर की धूप गर्द के झकोरों में तलफला रही थी। लेसुवे के दरख्त पर देर से चीखती हुई कमेडी अचानक चुप हो गयी···अब सिर्फ तेज हवा और गर्म धूल की सनसनी थी···अन्य कोई आवाज नहीं !

माथे और भौंहों का पसीना छिटकारते हुए वह कुछ क्षण अस्थिर-सा खड़ा रहा। उसकी आंखों में उदासी की काली छायाएं थीं, हालांकि वह एक हफ्ते से उन छायाओं को नष्ट करने के लिए अपने-आपसे लड़ रहा था।

वह जान गया था कि अब यह घर उसके लिए नहीं रहा। वे तमाम दबे-पुराने निशान मिट चुके थे, जिनमें वह अपने बालपन की दुनिया को ढूंढ़ने आया था।

"तू कब आया, हिमू ?"

सामने पुन्ना बिश्नोई खड़ा था। दाता का दायां हाथ, असल हाज-रिया और समूचे इलाके को एक घड़ी में टान देने वाला।

"कई रोज हो गए।"

उसकी निगाह पुन्ना के पीछे झाग गिराते हुए ऊंट पर गयी, फिर रंग-बिरंगे गोरबंध के गलपट्टे पर और फिर ऊपर बैठी हुई स्त्री पर। स्त्री ने मुंह मोड़कर ओढ़नी की आड़ कर ली।

"मैं गज्जसर चला गया था, इसको लाने के लिए !" पुन्ना स्त्री की ओर देखकर मुस्कराया।

"यह कौन है ?"

वह भीतर उमड़ती हुई बेचैनी और उसके भभकारों को रोकने की कोशिश करता हुआ नीचे देखने लगा। लाल मकोड़ों का एक झुंड बिल से बाहर फूट पड़ा था…जा रहा था कहीं, शायद चारे-दाने की खोज में।

"ठाकर-सा की गोली है।" पुन्ना ने कहा और फिर झट से पीठ सटाकर स्त्री को जमीन पर उतार दिया। एक छपाके के साथ कूदकर वह अनिश्चित-सी चलने लगी।

"ठहरो! मैं संग चलता हूं। रावला उधर है…" पुन्ना पुकारते हुए उसकी तरफ बढ़ा, "हिमू, तुम भी आओ। गज्जसर के मतीरे भी लाया हूं मैं। मिसरी के माफक मीठे हैं।"

वह गुम-सुम होकर पुन्ना को, गोली को जाते हुए घूरता रहा। सुबह मां ने कहा था…

दराती की धार-सी कोई चीज उसके कलेजे में धस गयी। वह जानवरों के बाड़े की दिशा में सिर झुकाये चलने लगा।

…वह सोकर उठा था और चबूतरे के किनारे खड़ा चेहरे पर पानी छिड़क रहा था। कुल्ला करते-करते सहसा उसे लगा कि किसीने आवाज दी है। लोटा रखकर मुड़ा। छपरे की बल्ली को हथेलियों से सहलाती हुई मां उसे अजीब दहशत-भरी निगाहों से ताक रही थी।

"तुम…अभी और रुकोगे, यहां ?"

मां के इस सवाल पर वह चौंका नहीं। वैसे एक वक्त था, जब वह उसे अधिक-से-अधिक दिन अपने पास रखने के लिए बहाने खड़े किया करती थी।

"अच्छा हो, तुम जल्दी लौट जाओ।" मां ने पिछवाड़े के झाड़-झंखाड़ में नजर गड़ा दी…वहां आक के सूखे फाहे उड़ रहे थे।

वह पूछना चाहता था, "मां, इस घर को क्या हो गया है ? यह तो उत्तर ढाणियों के ठाकुर का गढ़-रावला है। इसके अखरे-बखरे में मौत

का-सा सन्नाटा क्यों पसरा हुआ है ?" लेकिन—एक शब्द भी होठों तक नहीं आया।

"जाने से पहले दाता से मिलना और कुछ देर उनके पास बैठना··· तुम्हारे पिता हैं, वो। उनकी बातों का बुरा न मानना।"

मां का स्वर सपाट था।

हिमू ने···दिल्ली की पढ़ाई-लिखाई और फिर ऊंची नौकरी में निरंतर संबोधित किए जाने वाले 'हेमसिंह भाटी' ने, मां को हां-ना कुछ नहीं कहा। उसे अहसास था, अपने इस जनम-गांव में आकर वह अक्सर गूंगा हो गया है···

सूरज टीलों की ओट से गिरने लगा था। एक पीला धुंधलका चौतरफा बिखर गया था। उस धुंधलके में अब खेतों से लौटती हुई आवाजों और पंखेरुओं की चहकारों का घोल भी मिलता जा रहा था।

बाड़े को लांघता हुआ जब वह थूहर की घेर-घुमेर टपरी के निकट पहुंचा तो सहसा ठिठक गया। वहां माची डालकर दाता लेटे हुए, कीकर की एक नंगी टहनी को धीमे-धीमे ईस पर बजा रहे थे।

वह पलटने की बात सोच ही रहा था कि उन्होंने देख लिया। बोले कुछ नहीं। सिर्फ देखा और टहनी ठकठकाते रहे।

धूल का एक रेला आया और उनके ऊपर से गुजर गया। वह जाकर माची के पायताने बैठ गया।

"क्या चाहते हो ?" दाता गुर्राये। कानों तक चढ़ी हुई उनकी दाढ़ी के उलझे-मैले बालों में हरकत हुई।

एक क्षण के लिए हेमसिंह भाटी नाम के व्यक्ति को लगा कि उसका अपमान हो रहा है, किंतु तुरंत ही उसने यह भी समझ लिया कि माची पर पड़ा हुआ बूढ़ा कोई मामूली आदमी नहीं, जसराजसिंह भाटी है। इस हैसियत को वह सदा अपने बाप के खाने में दर्ज करता रहा है।

"मैं कल···जाना चाहता हूं। छुट्टियां ज्यादा नहीं हैं।" उसके गले में हकलाहट पैदा हो गयी। वे तमाम युक्तियां और चतुराइयां, जिनका इस्तेमाल वह न्यायाधीश की कुर्सी से किया करता था, पिलपिला कर

ढह गयी। उसका दिमाग सुनसान हो गया।

"मुझे बड़ी खुशी होगी।" दादा होठ चबाते हुए बोले, "हाकेम साहेब की मेहरबानी है कि वो यहां तक चलकर आये!"

"आप···गलत समझ रहे हैं।" वह लगभग गिड़गिड़ाने लगा।

"किसी को गलत समझते हुए—आदमी खुद भी गलत हो जाता है, जानते हो?"

दाता ने लंबी सांस ली।

"प्यास लगी है—आजकल होता है ऐसा—बोलता हूं तो कंठ सूखने लगता है।"

उन्होंने खंखार कर थूक दिया।

वह दौड़ा···उसी तरह,जैसे छुटपन में दौड़ा करता था···दाता के वास्ते कभी अम्मल, कभी दारू, कभी पानी लाने के लिए।

पूरा एक लोटा गले में ढाल कर उन्होंने मूंछों को निचोड़ा और वापिस अध-उठंग लेट गये।

"मैं तो खुद को खत्तम कर चुका, हिंमू! और—मेरा ख्याल है कि तुम भी उसी रास्ते पर हो।"

"ऐसा क्यों कहते हैं···"

"वजह है इसकी···तुम्हें बरबादी की तरफ ले जाने के लिए मैं ही जिम्मेदार हूं···मैंने जिंदगी-भर ठकुरायत की। पहले रजवाड़ा था, वो नहीं रहा, तो मुखिया चुन लिया गया। गढ़ की हुक्मत कायम रही। मैंने चाहा कि तुम बड़े हाकेम बनो, इसलिए तुम्हें पढ़ाया-लिखाया, लेकिन यह मेरी भूल थी। मैंने·· तुम्हारा सुख छीन लिया।"

"मैं चैन से हूं, दाता! सब तरह का आराम है।"

"चैन क्या होता है? यह कि तुम जिसे चाहो सजा दो या छोड़ दो?" उनके होंठों पर चाकू की तरह एक चमकीली मुस्कराहट खेल गयी, "ओहदा पाकर हम सोचते हैं कि बहुत कुछ मिल रहा है···लेकिन जो चुपचाप खो जाता है और फिर कभी हासिल नहीं होता, उसका पता नहीं चल पाता।"

वाड़े के मवेशी वाजरे की कड़वी कुटकुटा रहे थे और नांद में नथुने रगड़ते हुए खुर पीटने लगते थे। पुन्ना पोखरे से डोल भरकर ला रहा था। उन्हें वतियाते हुए देख वह नजदीक आकर खड़ा हो गया।

"तू—" वाऊ ने उसे लंवी गाली दी, "भाग यहां से !"

पुन्ना का चेहरा पीला पड़ गया। पुराने, खजराये नींवू की तरह। उसने धीरे से कहा, "वोह...आ गयी है।"

"कौन ?"

"गज्जसरवाली गोली।"

"सुनकर वाऊ की आंखों में प्रतिहिंसा तमतमा उठी। उन्होंने ऊन के गोले की भांति दाढ़ी को खोल डाला, "जा...और अव तू ही सोजा, उसके साथ।"

पुन्ना सकपकाया हुआ-सा वहां से हट गया।

"औरत और शराव...इन दो चीजों ने मुझे रौंद डाला है।" दाता ने हवा में हाथ हिलाया।

कल पुन्ना की घरवाली ने हिमू को उस गोली के वारे में वताया था। अढ़ाई-तीन साल पहले, दाता गज्जसर गये थे। वहां की एक 'गोठ' में उस गोली को देखा और रीझ गये। रात को वहां से चले तो उसे भी गेंद की तरह उछालकर अपने ऊंट के पिलाण पर विठाल लिया। आठ-दस महीने गोली को अपने रावले में रखा। इस प्रसंग को लेकर गज्जसर के रावजी से खूव तनातनी भी हो गयी, क्योंकि गोली उनके घराने की थी। लेकिन...एक रोज, दाता खुद-व-खुद गोली को गज्जसर छोड़ आये। लौटे तो उनके साफे में धूल भरी हुई थी और उन्होंने विना कारण वदरी चमार को छड़ी से पीट-पीटकर फींच डाला था...फिर, रफ्ता-रफ्ता उनकी दुनिया सिमट गयी। मामला रावले का हो या पंचायत का, वे कोई दिलचस्पी नहीं लेते थे। वे अपने अंदर उलझ गए थे। तकली से निकलकर गिर पड़े सूत के कुकड़िये की भांति।

हाल ही में मां और पुन्ना ने तय किया कि किसी तरह उस गोली को ले आया जाये। हो सकता है, उसकी 'संगत' दाता को फिर से संसार की ओर मोड़ दे।

"तुम्हारी मा बेवकूफ है और धुन्ना उससे भी ज्यादा···वैसे, दुनिया में बेवकूफ न हों तो जीना दूभर हो जाये।" वे हंसे। उनके शब्द उनकी हंसी को पीछे धकेल रहे थे, "दुःख···सभी का दुःख फूहड़ होता है। हमदर्दी दरसाना···मजाक उड़ाने का एक तरीका है। ठीक भी है, दुःखों पर हंसना चाहिए। लेकिन, कभी-कभी···मुझे हंसने की बातों पर जरूर दुःख होता है।"

"मुझे मालूम हुआ···कि आप उस गोली को चाहते हैं।"

"हिमू! तुम भी···" उन्होने दांत भींचकर गाली निगल डाली, "औरत और मर्द में से एक हमेशा दूसरे का गुलाम होता है, लेकिन कोई इसे मानेगा नहीं—वह मेरे पास बहुत खुश थी। बहुत मस्त। गोलियां मैंने कितनी ही रखीं···तुम्हारे सामने भी मुझे संकोच नहीं था और मैं उन्हें पकड़ कर बेरहमी से पीस डालता था···मुझे देखते ही उनके चेहरे उतर जाते थे। लेकिन···गज्जसरवाली गोली को तो जैसे मनचाहा मिल गया। आठों पहर उसका अंग-अंग नाचता था। मुझसे उसकी खुशी बर्दाश्त नहीं हुई। मैं अंदर ही अंदर ताव खाने लगा। और—एक दिन तो उसने हद कर दी। हंसते हुए, ताली-पटका, बजाते हुए बोली, 'हर मर्द की दुम उसकी दो टांगों के बीच होती है जिसे वह औरत के सामने हिलाता है।'···मैंने लात मारकर उसे बिस्तर से परे फेंक दिया।

दाता जो कुछ कह रहे थे, उसमें कुछ नयापन नहीं था। उसने पिता के कई रूप देखे थे···यहां तक कि आदमी की गर्दन को भी मसल डालते हुए, महज कीड़े की तरह!

"हिमू, मैं बुराई का···कालिख का पुतला हूं। अजीब बात है, औरतें बुरों के पीछे ही दौड़ती-मरती हैं। मैंने···बेहिचक हत्याएं की हैं। इतने पाप किये हैं कि सारे याद भी नहीं। तुम···कानून-कायदे की कचहरी में रहते हो—लेकिन तुम मुझे फांसी पर नहीं चढ़ा सकते···जिस दिन ऐसा करना चाहोगे, मैं तुम्हारा भी टेंटुआ तोड़ डालूंगा। मैं जब मरूंगा, अपनी मौत मरूंगा और···तुम देख रहे हो कि मैंने अपने आपको मौत के कुएं में ढकेल दिया है। अपनी मां से, गोली से,

पुन्ना से…सबसे बोल देना कि जो कोई मुझे निकालने की कोशिश करेगा, मैं उसे भी अंदर खींच लूंगा।"

शाम गहरी हो चुकी थी। फोग-खेजड़ों के मैदान में ऊंचे-ऊंचे ढूह ऐसे लग रहे थे मानो आग लहक उठी हो। दाता ने एक दृष्टि उधर डाली और फिर तकिये का कपड़ा मुंह पर रख लिया।

वहां से टलते हुए हिमू ने एक हल्कापन महसूस किया। वे तमाम बातें, जो दाता के मुंह से निकली थीं, कहीं-न-कहीं उसके भीतर भी जमा थीं। दाता ने उन्हें उकसा दिया। उसका अपना जीवन और… जीवन का अंतःपुर दाता से अधिक विकराल था। कुछ कदम चलकर उसने दाता की ओर इस तरह देखा…जैसे वे पेंदे में पड़े हों और वह स्वयं किनारे पर किल्लोल कर रहा हो। सुविधाओं से अटे हुए उस किनारे को सांड़ की तरह खूंदते हुए वह अपने संतोष और असंतोष का निर्णय नहीं कर पा रहा था।

"समय आयेगा, जब मैं अदालत के कठघरे में खड़ा होकर अपने तमाम जुर्म कबूल करूंगा और कहूंगा…"

"नहीं, वह समय नहीं आयेगा—न दाता के लिए, न मेरे लिए।" वह बड़बड़ाया और अचानक अपने सामने एक सुर्ख चाबुक लहराते हुए देखकर पीछे हट गया।

"ओह !" भय ने उसे बुरी तरह जकड़ लिया। वह एक तीन-साढ़े तीन फुट लंबा सांप था और गेंडुली पर गेंडुली बनाता जा रहा था।

हिमू किसी को पुकारना चाहता था, पर आवाज गले में जम गयी। पिंडलियों पर पसीना रेंगने लगा। अंदर मतली उमड़ने लगी। वह गिर पड़ा।

"उठो !" किसी ने उसकी बांह को छुआ।

आंखों के आगे से कुहरा हटने पर उसने डरते-डरते देखा।

वह सामने खड़ी थी। नंगे पांव। हाथ में बांस की जेई, जिसके सींग की नोंक से खून टपक रहा था।

सांप मरा नहीं था, लेकिन उसका मुंह चींथ दिया गया था। वह

पूंछ पटकता-थरथराता हुआ ठंडा हो रहा था।

"यह···तुमने किया ?" अपनी मिमियाती हुई आवाज पर हिमू को आश्चर्य हुआ। लेकिन···उसका डर, अब हिंसक आकार ग्रहण कर रहा था—खास तौर से उस स्त्री, उस गोली के भरे-भरे बदन को देख कर। उजला-धुला···जल की सतह पर तैरता-सा मुख !

"हां।" वह हंसी, "इससे पहले कि वह तुम पर फन से वार करे, मैंने उसे पटक दिया···"

अंधेरा घिर रहा था। भूसे के बोरे अजीब ढंग से रहस्यमय हो उठे थे।

"अब···मैं तुम्हें पटकूंगा।" हिमू के जबड़े खिंच गये। उसने गोली की बांह पकड़ ली। वह हंसने लगी, जोर से।

"हंसो मत।"

वह उसे बोरों की ओट में खींच ले गया। गोली का स्वर खनका, "हसूंगी···तुम मेरा क्या कर लोगे ?"

उसने गोली को गिरा दिया। फिर दोनों के चेहरे, हाथ और पांव बेतरह गुंथ गये।

हिमू की झेंप और कायरता, तीखी रीस में बदल गयी। "यही है, यही है वह···जिसने सांप को और दाता को कुचल दिया। मैं इसके टूक-टूक बिखरा दूंगा। स्साली, क्या समझती है खुद को···" वह गालियां दे रहा था। हूबहू दाता की तरह। स्त्री फड़क रही थी, रोम-रोम से। लिपट रही थी। कस रही थी उसे और इतनी प्रसन्न, इतनी तन्मय थी कि···हिमू सुलग उठा। "नहीं, यह बर्दाश्त के बाहर है।" उसने पूरी ताकत लगा दी, "तेरी ऐसी की तैसी, मटिया-मेट कर दूंगा चुड़ैल को।"

एकाएक उसकी नसें शिथिल पड़ गयीं। एक झटका-सा लगा और वह बुझ गया, एकदम। गोली की देह और उसकी गरमाहट···चुभने लगी। पराजित हो जाने के अनुभव ने फिर उसी खिसियाहट, दैन्य और रुग्णता को उभार दिया।

गोली ने उसके होंठ काट लिए और गर्दन पर मुक्का मारकर बोली,

"वस्स ?"

वह शर्म से भीग गया।

"धत् !" गोली की आंखों में घृणा खिंच गयी, "तुम्हारा बाप फिर भी जब्बर है। तुम तो माटी के लौंदे निकले।"

उसने कोई जवाब नहीं दिया और मुर्दे की भांति पड़ा रहा। चिपचिपाहट और ग्लानि से तर-ब-तर।

"अब उठो भी !" गोली ने उसे धकियाया, "मैं तो चूल्हे पर तवा रखने जा रही थी कि हरामी ने पकड़ लिया।"

हिमू ने देखा, गोली के हाथ आटे से सने हुए थे। वह उठा, ऊपर से नीचे तक कांपता हुआ।

घाघरे को जोर से फटकारकर गोली तेज-तेज चली गयी।

"कौन था उधर ?" अंधकार में एक सपाट स्वर उठा।

"मेरे साथ ? अभी ?" गोली की आवाज में हंसी की गनगनाहट थी।

"हां।"

"रहने दो ! क्या करोगी पूछ कर !"

हिमू ने गोली के कंठ में घुमड़ते हुए उपहास को महसूस किया और तिलमिला उठा।

"बताओगी नहीं ?" मां ने फिर सवाल किया। वही एकरस और हवा की अलगनी पर अटका हुआ मृत स्वर।

"तुम्हारा बेटा था।"

"अच्छा।"

आगे बातचीत बन्द हो गयी।

हिमू की ग्लानि के चौगिर्द भी अंधेरे के आड़े-तिरछे, काले कपाट बंद हो गये। अब वह सुरक्षित था। तभी उसने गर्दन के पास चुभन महसूस की। वह बांस की नुकीली जेई थी। उस जेई से ही गोली ने सांप का फन बींध दिया था।

अपने गले पर जेई की नोंक और उससे टपकते हुए खून के स्पर्श के साथ, हिमू भूसे के ढेर पर पड़ा रहा। मन में जाने क्यों तीव्र इच्छा

पैदा हुई कि वह सांप एकबारगी जिंदा हो जाये, उस पर हमला करे और उसे डस ले। लेकिन डंसने के लिए अब क्या शेष रह गया है? हिमू ने आह भरी, सब कुछ नष्ट हो चुका है। यह तो अंतिम संस्कार का क्षण है। □

# भरत मुनि के बाद

आंखें धुआं दे रही थीं। लग रहा था, जैसे कोरों पर लाल चिन-गियां चिटक रही हैं। तेजी से। उनकी जलन से चेहरा ऐंठ रहा है। जीभ पर राई-राई छाले पड़ गये हैं। वे कष्टप्रद ढंग से लिसफिसा रहे हैं। गालों पर सूजन चढ़ गयी है। नथुने गर्म भाप छोड़ रहे हैं और माथा त्योरियों से भर गया है।

डेढ़ वजे तीसरा शो खत्म हुआ था। रात को। हाल में सीटें छोड़ने की आवाजें फैल गयी थीं। उनके ऊपर-ऊपर तैयारी हुई भन्न-भन्न-भन। [illegible] की। दर्शक काफी खुश थे और टूटे-फूटे शब्दों के सहारे स्वयं को व्यक्त करने से रोक नहीं पा रहे थे। मैं अंत तक आते-आते इतना लस्तपस्त हो चुका था कि उनके असंयम और उत्साह का सामना नहीं कर पा रहा था। स्टेज से एकदम भागकर ग्रीनरूम में पहुंचा। करीब-करीब मुंह नोंचते हुए मेकअप साफ किया। रहमान मेरी वेहूदी उतावली पर हंसने लगा। जल्दी-जल्दी पिछवाड़े से वाहर निकला और स्कूटर पकड़कर चल दिया।

मैं सोना चाहता था। पलकें वोझ से गिर रही थीं। विस्तर में घुस-कर अकेले और अनाथ की तरह पड़ गया। चादर कसकर लपेट ली। हाथ-पांवों को ढीला कर दिया। दिमाग को विचारों से शून्य। पर नींद नहीं आयी। करवटें मारता रहा। दायें, वायें। वगलें दुखने लगीं। हड्डियों के जोड़ कड़कने लगे। खून में एक सन्नाटा लगातार वजता

रहा। कभी हल्की-सी झपकी आ जाती, तो लगता, खाई में चल रहा हूं। गाढ़ा अंधेरा शरीर से चिपक गया है। कहीं से सुइयां निकल आती हैं और चुभने लगती हैं। कहीं से वर्छियां चमकने लगती हैं। उनकी धार चमड़ी को छीलने में जुट जाती हैं।

तभी एक कर्कश घंटी टन-टन-टन कर उठी। उसकी एकरस ध्वनि किसी जहरीले-नुकीले कीड़े की भांति कानों में प्रवेश कर गयी और आर-पार होने लगी। मैं झुंझला कर उठ बैठा।

दूधवाला था। चंदगी। वह बरामदे की सीढ़ियों के पास साइकल खड़ीकर घंटी टुनटुना रहा था। कुछ देर बाद बरतनों की खड़-खड़ हुई और मौसी से उसके वार्तालाप के अस्पष्ट टुकड़े सुनायी दिये। फिर वह आगे चला गया। टनन-टनन। हरामी! मैं उचाट होकर चंदगी पर गुस्सा उतारने लगा। उसने मेरी रही-सही ऊंघ भी छीन ली थी और अब मैं किसी भी तरह सोने की कोशिश करना फिजूल समझता था। दरवाजे की जाली के उधर चिड़िया बोल रही थी।

मैंने पलंग के नीचे पैर लटका दिये। आलस-डूबी, खिन्न दृष्टि से कमरे की छत को देखा। वहां कोने में मोरपंखी का झाल झूल रहा था। बीच में पंखा। उसके तीनों डैने अधपीले और मक्खियों द्वारा दिये गये दागों से लैस थे। इस तरह स्थिर थे, चौकन्ने, मानो जासूसी कर रहे हों।

मैं स्लीपर डालकर बाहर आ गया। बरामदे में दो खंबे थे, बस। उकताये हुए। अपनी हैसियत से। फर्श की चिकनाई में काले-भूरे-बैंगनी तिल छिटके हुए थे। मैं उतरकर लान में टहलने लगा। सुबह। थकी-थकी सुबह।

घास का हरापन अति परिचित था। कुछ-कुछ मासूमियत लिये हुए। क्यारियों में गुलाब के कांटेदार पौधे सूने-सूने थे। एक भी फूल नहीं खिला था। कुछ पत्तियां झुलसकर सूख गयी थीं। धूप की ठंडी किरनें मन को तसल्ली देने वाला उजास दे रही थीं, पर मुझे उनके स्पर्श से राहत नहीं मिली। उलटे, आंखें मिच-मिच हो गयीं और उनकी भभक नये सिरे से सुलगने लगी। मैं मूढ़े पर पसर गया। छाते के तले

छाया का गोल घेरा मुझसे लिपट गया। घुटने अभी भी धूप में थे और उनपर सलवटों-भरा पायजामा पड़ा हुआ था। पांयचों की किनारी पंजों को काटकर अलग कर रही थी। मैं सोने के कपड़ों में था। वे इतने मुड़े-चुड़े थे कि किसी को भी परेशान कर सकते थे। एक पखवारे से उन्होंने धोबी की शकल नहीं देखी थी। इस खुली छूट ने उन्हें लापरवाह और ढीठ बना दिया था। वे जिस रूप में थे, लज्जित नहीं थे, बल्कि अपने को एक आकर्षक बुराई में समेटे हुए थे।

दाहिनी तरफ तिपाई पर राखदानी पड़ी थी। ठसाठस। पिता इतनी सिगरेटें पीते थे कि उसमें कभी रिक्तता नहीं आती थी। वह सदा होंठों तक भरी रहती थी। एक असहाय भाव से। एक ऐसी औरत की भांति, जो कभी वाचाल रही हो, पर बाद में ठोक-पीट कर गूंगी बना दी गयी हो। उसका गूंगापन कठिन और असह्य होता है, पर धीरे-धीरे हम उसके आदी हो जाते हैं। तब वह निरर्थक हो जाती है। कोई हलचल पैदा नहीं करती। उसे लेकर उगने वाली ऊहापोह मर जाती है और शंकाओं का खजाना रीत जाता है।

मैं राखदानी के प्रति उपेक्षा बरतना चाहता था, पर अचानक उसका फूहड़पन कचोटने लगा और मैंने उसे घास पर उलट दिया। कालिख के कुछ कण उड़कर मेरे कुरते पर जम गये। उन्हें फटकारकर मैं हथेलियां पीसने लगा और माथे के भारीपन को छोटे-छोटे आश्चर्यों से, जो कहीं भी खोजे जा सकते हैं, हलकाने में रम गया।

लान जहां खत्म होता था, एक कच्ची पगडंडी थी और वह फाटक तक जाकर रुक गयी थी। फाटक की कुंडी हवा से हिल रही थी। उसकी सांकल काठ से टकराकर झनक-झनक कर रही थी। उसमें नल की टप-टप का क्लांत स्वर मिल गया था। उसे बंद करने की इच्छा नहीं हुई। लगा कि वह टपटपाता रहे, तो मैं विस्मय-विभोर बने रहने की मुद्रा अपना सकता हूं।

आगे की सड़क पर एक तांगा जा रहा था। धचकाता। घोड़े की आंखों पर टोपियां बांध दी गयी थीं, वह धृतराष्ट्र की तरह चलने का अभ्यस्त था और अपनी गरदन के झब्बर बालों की कलंगियां झुला रहा

था। तागे में किसी स्कूल के बच्चे थे। लदफद। बस्तों में जकड़े। शोर मचाते हुए। इनका चिल्लाना क्या माने रखता है? मैंने अपने दायरे मे उनके खलल को अस्वीकारते हुए सोचा और एक गहरी सांस खीच ले गया। फेफड़ों ने तनकर कहा, हमें तंग मत करो? चुपचाप पड़े रहो, गवदू!

मैं उनसे नाराज नही हुआ।

अहसान मानो कि मैं तुम्हे सुवह-सुवह की हवा से ताजगी दे रहा हूं! मेरा जवाव संयत था।

हमें ताजगी नही चाहिए! उन्होने विरोध प्रकट किया।

भाड़ मे जाओ! मै भुनभुनाकर नाक खुजाने लगा। भलाई करने का जमाना नही रहा! मुझे ताज्जुब हुआ। रंज भी। इस वाक्य के कारण। यह मेरे पिता का घनिष्ठ कथन था। सिद्ध हथियार। अनजाने मैंने इसका इस्तेमाल कर लिया था। पिता अक्सर और लोगों के वहाने इसे मुझपर थोपते थे। वह पी. डब्लू. डी. के मान्यताप्राप्त ठेकेदार थे। ओवरसियरो और इंजीनियरों से लेकर चपरासियो तक से त्रस्त रहते थे। उनकी निंदा मे उवलते समय पिता की वाणी ओजमयी हो उठती थी, पर अंत मे कोई-न-कोई समानता ढूढकर वह उस पूरे अध्याय को मेरी तरफ मोड लेते थे। मैं उन बेईमान अधिकारियों का प्रतीक बना दिया जाता था, हालांकि मैं खुद उनसे नफरत करता था और कम-से-कम मामले मे पिता से सहानुभूति रखता था। इस सहानुभूति को स्पष्ट करने, या पिता को समझा देने की ख्वाहिश भी दो-एक बार हुई, फिर मुझे ऐसा करना अनुचित लगने लगा। अनुचित इस अर्थ मे कि पिता सोचेंगे, मैं उनका मजाक बना रहा हू। यों मुझे पिता का मजाक उड़ाने में कतई रुचि नही थी। इतनी सस्ती हरकतों के लिए मैं स्वयं को तैयार नही कर पाता था। जव-जव वह मेरी अक्ल के परखचे विखराते थे, मैं एक ऊचे किस्म के संतोष से भर उठता था कि चलो, बूढे को खुश हो लेने दो! मेरा विश्वास था कि यों खुशी देकर मैं उनके दीर्घायु होने के संकल्प को मजवूत वनाता था। मेरी चुप्पी च्यवनप्राश से अधिक लाभ-दायी और स्वास्थ्यवर्द्धक थी।

आकाश के दो पाट करता हुआ एक हवाई जहाज ऊपर से गुजर रहा था। दिल्ली जा रहा है। मैंने अंदर की खटपट को रोककर उस पर नजर गड़ा दी। वह किसी तैराक की भांति लग रहा था, जो सांस साधकर बड़ी कुशलता से अपने को पानी की सतह पर निश्चल छोड़ देता है। कुछ पल उसी की गूंज में बीते। आखिर वह निस्सीम नीलाई में विलीन हो गया। आसमान वापस जुड़ गया और चढ़ती हुई धूप के झिलमिल तारों से खेलने लगा।

सिसकारी लगाती हुई एक चील कहीं से आ टपकी थी और पंखों के फैलाव को तौलती-नापती ऊंचाई की ओर बढ़ रही थी। मैंने तय किया कि उसकी उड़ान नहीं देखूंगा।

झटके से गरदन मोड़ी, तो जरा अचकचा गया। वासू चाय लेकर खड़ा था। मैंने प्याला उसके हाथ से ले लिया और एक घूंट सुड़क गया, सिर्फ यह जानने के लिए कि चीनी ठीक है या नहीं। वासू कभी कम, कभी ज्यादा डाल देता था। रोज-रोज की मगज़पच्ची के बावजूद उसने मेरा अंदाजा नहीं पकड़ा था। मैंने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। यानी चाय का स्वाद गले में उतरने लायक था। वह आश्वस्त होकर चला गया। मैंने उसकी पीठ पर कूबड़नुमा उठान देखी। उसने अटके-भटके पांवों से बीच की दूरी पार की और मौसी के कमरे में घुस गया। मैं प्याले पर बच्चों की तरह ओक लगा कर झुक गया। एक गरमास मेरे भीतर अंगुलियां चलाने लगी।

मैं अपने को सेंकता हुआ, तरोताजा करता हुआ आगे बढ़ने लगा। सामने पेड़ों की सीधी कतारें थीं और सड़क उनमें खो-सी गयी थी। चेरी के पेड़…मैं बुदबुदाया, हालांकि वे सब नीम थे। तिरछी-लंबी पत्तियों में गुच्छल। चेखव का नाटक, उसके पात्र और संवाद मेरे भीतर गड्डमड्ड होने लगे। एक माह से वे मुझपर हावी थे। मैं उन्हींके साथ बोलता था, खीजता था, प्यार करता था। रात वह 'जीवन' मंच पर घटित हो गया। एक-एक घटना, एक-एक दृश्य। मेरे लिए उनमें से गुजरना कितना यातनापूर्ण था ! मैं त्रोफिमोव ! ओह रैनिवस्काया, मैं तुम्हारे दुख को किस तरह कम करूं ? तुम्हें इस घर से लगाव है,

इतना कि चेरी-बाग के साथ तुम खुद बिकना चाहती हो !

इस भावुकता पर हंसकर मैंने अपने बालों को थपथपाया। कंघा न किये जाने की वजह से वे आपस मे गुंथकर घोसला बना चुके थे। चाय की उष्णता से घिरे-घिरे मैं लोपाखिन की बगल मे जा खड़ा हुआ। नेपथ्य मे कुल्हाड़ी चलने की आवाज उभर रही है और एक करुण संगीत, जो एक कमजोर रेशे की तरह कांप रहा है। हवा में।

मेरे शब्द लौट आते हैं। पालतू कबूतरों की भांति। फड़-फड़-फड़ और गुटर-गू का दम भरते हुए। सुनो, दोस्त, मैं अपनी जरूरतों को सीमित रखता हूं, क्योंकि आत्म-गौरव को खोना मेरे लिए मृत्यु से बदतर है। जो चीजें तुम्हारी निगाह मे अमूल्य है, मुझपर उनका कोई असर नही होगा। मैं उनके बिना भी जिंदा रह सकता हूं। मेरे लिए सब पानी के बुलबुले हैं। लोपाखिन व्यग्य से मुस्कराता है। मुझपर बिगड़ो मत। जिंदगी की रफ्तार किसी की प्रतीक्षा नही करती। वह अपने ढंग से चलती रहती है।

अतिम घूट लेकर मैं कप-प्लेट तिपाई पर रख देता हूं। संवाद मन मे घुमड़ रहे हैं। खदबदा रहे हैं। बटलोही मे सीजते हुए दलिये की तरह। दर्शकों के लिए नाटक रात को खत्म हो गया, पर मैं उससे स्वयं को मुक्त नही कर पा रहा हूं। घूम-फिरकर वही जाता हूं। उस एकात मे। सईदा, नही, आन्या एक विषादभरी धुन के संग किसी असमंजस मे है। मैं उसकी खामोशी को तोड़ता हूं, "आन्या, अपने को पीछे मत फेंको। आज को पूरी तरह, निर्द्वन्द्व जीने के लिए हमे अतीत को तोड़ना होगा। उसे नष्ट किये बिना कुछ भी करना असभव है।"

आन्या की आंखें सजल हो उठती हैं, "सच पेत्या, तुम चीजों के बारे में कितने साफ-सुथरे ढग से बोलते हो ! अब इस चेरी के बगीचे को लेकर मैं चिंतित नही हूं। मेरा मोह छूट रहा है। पृथ्वी पर सौंदर्य बिखरा पड़ा है। हम कही भी जायें, वह साथ चलता है। उसे प्यार करने के लिए सभी स्वतंत्र हैं।"

—जरा सोचो तो सही, आन्या ! मेरी आवाज का बल उफनने लगता है—दुनिया तुच्छताओं और पागल आकाक्षाओ के बीच भाग रही है।

उसके वर्तमान का रंग धुंधला पड़ गया है। विश्वास मुरझा गया है। पाने के आनंद से अधिक खोने का भय विस्तार ले रहा है। हमें इस झूठ, इस खोखले समय से लड़ना है।

सईदा के होंठ मेरे नजदीक आ जाते हैं। लेकिन मैं उन्हें चूमता नहीं, क्योंकि तभी सारा सत्त निचुड़ जाता है और कोई फुफकारी दे कर चिल्लाने लगता है—हट जाओ मेरे सामने से !

आन्या चली गयी है। सईदा उसका अस्थि-पंजर लिये खड़ी है। चुप। परदा गिर रहा है। जलतरंग की ध्वनियां मंद पड़ गयी हैं।

आवेश में सईदा का चेहरा भीग गया है। पसीने से। मैं निकट हूं। उस पर झुका हुआ। सब देख लेता हूं। वह अपने अभिनय को संभाले हुए है और उसकी आंखें मुंदती जा रही हैं।

मैं सहम गया और अपने आपको बचा लेने की चेष्टा में तुरंत सख्त पड़कर खड़ा हो गया, मानो सईदा के ख्याल को नहीं, सईदा को ही मैंने परे झटक दिया हो। कितनी ही बार इस शुष्क लड़की की गिरफ्त ने मुझे दुर्बल बनाया था। गंवार साबित किया था। ऐसा नहीं कि मुझे अपनी निरीहता क्षम्य लगती थी और मैं उसकी जकड़न को खामोशी से मंजूरकर बैठ जाता था। असल में यह सच्ची पहचान थी, जो तीव्रता से सिर पर चढ़कर बोलती थी। उसे ठुकराने का मतलब असहजता में धंसना और उबरने की न सोचना। मुझे पहले ही कई तरह के घुन खाये जा रहे थे—कुछ और निर्मम, भूखे घुनों के खाद्य में मैं स्वयं को नहीं डालना चाहता था।

करीब-करीब छलांगते हुए मैं बरामदे में आया और उसे लांघ कर कमरे का हो गया। कमरे में गर्द मचल रही थी। एक सांस तक इतमीनान से लेना कठिन था। मैंने देखा, मौसी फर्श पर झाड़ू पीट रही थी। बुहारी देने का उसका यही तरीका था। साड़ी का पल्ला कमरे में खोंसे हुए। जूड़ा छितराये। चूड़ियां कुहनियों तक चढ़ाकर। मुझे देखकर वह सकपका गयी और पल्लू को मुंह पर रगड़ती हुई सिर ढंकने लगी।

"यह क्या घमासान है !" मैंने तीखेपन से कहा।

वह बुत बनी रही। उसका पेटीकोट नीचे से झांक रहा था। उस पर

कसीदे की बेलें थी। पांव काले, अटपटे और बेढगे थे। मैं चिड़चिड़ा उठा, "तुमसे किसने कहा कि यहां सफाई की जरूरत है ? हर वक्त मेरे पीछे पड़ी रहती हो ?"

"तुम्हारा कमरा गदा हो रहा था, बिनोद बाबू !" वह नकिया कर बोली और झाड़ू की तडियो पर हाथ फेरने लगी।

मैं उससे सिर्फ चार साल छोटा था और वह मुझे आदर देकर बोलती थी। उसका चेहरा हमेशा तेलिया-मैलिया बना रहता था। मांग खूब चौड़ी। सिंदूर से भरी हुई। मा की मृत्यु के छ महीने बाद ही पिता उसे किसी गरीब घर से ले आये थे। कभी-कभी उसका एक भाई मिलने आता था, जिसकी एक आख मे सुफेद फूला था और जो इतनी जोर से बातें करता था कि पडोसी उझक-उझक कर देखने लगते थे। मैंने उसका नाम 'हंगामा' रख दिया था। मौसी को फिल्मे देखने का शौक था, पर वह हंगामे के साथ ही जाती थी। पिता चित्रपट से उतने ही चिढते थे, जितने कि मुझसे। एक अचभे की बात थी। रात को बिस्तर पर लेटे-लेटे मौसी अकसर पिता को फिल्मों की कहानिया सुनाया करती थी। वह हा-हू करते हुए पड़े रहते थे।

"अच्छा, जल्दी से कुछ करो और पिंड छोड़ो !" मैंने बौखलाकर कहा और उसके बाहर निकलने के लिए रास्ता बना दिया। मौसी का चेहरा शर्म और घबराहट के मारे सिकुड़ गया। उसने झाड़ू को चला कर कूड़ा इकट्ठा किया। उसे मुट्ठियो में भरने लगी। कचरे में निरोध का एक रैपर देखकर मैं चौंक गया। मौसी बिना कोई खयाल किये उसे अंगुलियो मे दबोच रही थी। मैंने मुंह फेर लिया।,

मौसी पाव फटफटाती हुई चली गयी। उस की फूहड़ चाल देखकर मैं हंसा। पीछे से। कूल्हे बेबाक भरोड़े खा रहे थे और कधे मचमचाते हुए घूमर देने लगे थे। मुझ में हिकारत एँठने लगी। सब कुछ बरदाश्त किया जा सकता है, पर ऐसी चलती-फिरती 'दुर्घटना' को नही।

मेज पर बियर की खाली बोतल मे एक मनी-प्लांट डाल दिया गया था और उसमें पानी भरते हुए मेजपोश का एक कोना गीला हो गया था। मैं मौसी की इस करामात को उत्सुकता से देखने लगा। इस औरत

को चैन नहीं है ! एक उच्छ्वास के साथ मैंने मुंह विचकाया और तुष्ट हो गया। कमरे में वदलाव आ गया था। खिड़की पर नये परदे लगा दिये गए थे। किताबों की अलमारी पर जमी हुई धूल पोंछे जाने से उसमें निखार आ गया था। पलंग के नीचे ठुंसे मैले कपड़ों को तहाकर गठरी में बांध दिया था। अंडरवियर, वनियान और तौलिया इधर-उधर न हो कर खूंटियों पर थे। स्टोव इतनी तन्मयता से मांजकर रख छोड़ा गया था कि उसकी चमक मौसी के फटे-हाल हाथों का अंदरूनी रहस्य प्रकट करने में असमर्थ थी। केतली के निशान भी नष्टप्राय थे। लोहे की दोनों कुर्सियां पास-पास थीं और उनकी नंगई गद्दियों से ढंकी हुई थी। मैं इन गद्दियों को यों ही पलंग के सिरहाने डाल रखता था।

मुझे लगा, कमरा इस परिवर्तन से उत्फुल्ल, किंतु संकुचित हो उठा है, जैसे किसी त्योहार पर वच्चे नये वस्त्रों को पहन कर संकोचशील और वंधे-वंधे से हो जाते हैं। उनकी मुक्त क्रीड़ाएं खो जाती हैं। वे अपने से ज्यादा नेकर और रूमाल का ध्यान रखने लगते हैं। तमाम हंसी खुशी के वीच एक वक्र सजगता उन्हें नामाकूल ढंग से खुरचती रहती है।

खैर, दो-एक रोज़ में सब कुछ उसी ढर्रे में शामिल हो जायेगा, मैंने वदले-वदले वातावरण की ओर से निश्चिंत होते हुए सोचा। यह देख मुझे संतोष का अनुभव हुआ कि विस्तर के ऊपर जो इंडियन एयरलाइंस का कैलेंडर टंगा हुआ है, वह अछूता और अप्रभावित रह गया है। अगस्त के महीने की आवो-हवा से वेखवर उसमें फरवरी की तारीखें चल रही हैं। शिमला की किसी पहाड़ी का चित्र है और चट्टानें वर्फ से लदी हुई हैं। एक संकरी पगडंडी उनमें से निकली है। सईदा ने इस दृश्य को एकटक देखते हुए आंखों को स्वप्निल वनाकर कहा था—कभी वहां चलेंगे।

सुनकर मैंने उसे परे ढकेल दिया था। इच्छा तो हुई थी कि कह दूं मेरी वला से, तुम जहन्नुम में जाओ, पर मैंने सिर्फ करवट वदलकर अपने को मोड़ लिया था। मैं जानता था, सईदा के पास अतृप्ति और तृप्ति के मध्य फिसलती हुई मिठास है, सुख की झुरझुरी है, जव कि मैं

जल-भरे घड़े की तरह एकबारगी औंधा दिया गया हूं और अब खाली होने के संताप के साथ लुढक रहा हूं। यह लुढकना ढलान मे रपटना है, सईदा को वही तजकर एक विपरीत दिशा की ओर पलायन करना है। हो सकता है, सिद्धार्थ ने भी किसी ऐसी ही स्थिति मे या उसकी निश्चित परिकल्पना से भयभीत होकर यशोधरा को छोड़ा हो। उसपर के अफसोस-विकास को बुद्ध के सांझे मे डालकर में भिक्षुक हो गया। फिर याचना करने मे कठिनाई या ग्लानि का अनुभव नही होता था। इसीको कहते हैं आत्मज्ञान। जब दुविधा आये, कोई सुविधा का रास्ता ढूढ लो और भवसागर पार हो जाओ।

गुसलखाने का फर्श ठंडा और स्वच्छ था। मैंने फव्वारा खोल दिया। बौछारें गिरने लगी। एक उत्तेजित, भावुक शोर प्रवाहित होने लगा। मैं उसके नीचे हो गया। देह मे एक झन्नाटा बजा और रोम-रोम विग-लित होकर लोटने-पोटने लगा। साबुन के झाग अंधकार को धो रहे थे। वह बूद-बूंद पिघलकर मुझसे अलग हो रहा था। आखो और सासों में सुगंधित शीतलता व्याप गयी थी। उस सुगंध का, जो लक्स की थी, एक मरा-मरा-सा संबंध सईदा के नग्न शरीर से भी था। मैं उसे सूंघ-सूंघ कर बेहाल होता था, पर वह पसीने और पाउडर के मेलजोल की वजह से वहा तीखापन ग्रहण कर लेती थी। उसके अगो की उष्ण धाराओं मे यह शीतल-सुहावना राग नही था। न यह ठाट और हलका-पन, जो मैं इस समय जल-वेग की छलछल ध्वनियो के संग महसूस कर रहा था। सईदा के तन की परिक्रमा करते-करते मैं अपने ही वजन से बोझिल और बेवक्त हो उठता था।

कपडों में खिलकर बाहर निकला, तो बासू दरवाजे से सटकर खड़ा था, जैसे किसी की ताक मे हो। उसका चेहरा इतना पराधीन और मुह-ताज था कि मैं किंचित नरम पड़ गया, "क्या बात है, बासू ?"

"बीबीजी ने नाश्ते के लिए पुछवाया है कि अभी लेंगे या बाद मे ?"

"मैंने कुछ लोगो को रेस्तरा मे टाइम दे रखा है।" कहते हुए मैंने टाई की नाट ठीक की। अपने को चुस्त दरसाता तेजी से चल पडा।

"आप लौटेंगे कब ?"

"अगले जन्म में !" यह मेरा मजाक था, जो प्रायः वासू के संग दुह-राया जाता था। वह दीनता से हंस पड़ा।

सड़क पर मिट्टी ढोने वाले खच्चरों का एक गिरोह जा रहा था। उनके साथ का लड़का बेबूझ टिचकारी दे रहा था और कभी-कभी उनमें से किसी के पुट्ठे थपथपा देता था, या पूंछ मरोड़ने लगता था। लड़के ने केवल धोती बांध रखी थी। पसलियां स्पष्ट। गले में डोरा। मुख मिट्टी-रंग का।

ऐसा ही है संसार। मैंने धार्मिक वेदना और वैराग्य की इस क्षणिक दीप्ति में घड़ी देखी। दस बजकर पैंतीस मिनट हो चुके थे। आकाश में कहीं-कहीं बादल थे। धूप में उलझे हुए। हवा नवयौवना थी। दरख्त छाताधारियों की तरह डोल रहे थे। हर कोना उजाले से लबालब। दिन इतना उत्सुक और निःसंग, जैसे विस्मयादिबोधक चिह्न।

मेरे मन में मोरचंग बज रहा था, टिउ-टिउ-टिउग-टिउ। लेकिन उसे कोई लंगा या गरासिया नहीं, रंगसाज बजा रहा था। हाथों में रंग। होंठों में रंग। सुरों में रंग। आसपास की प्रकृति निहाल हो गयी थी। पत्ते-पत्ते में शायरी शामिल थी। कवित्त धड़क रहे थे। उधर···मोती डूंगरी के एक छज्जे पर सघन पुष्प लहरा रहे थे और उनके कुंज में जाजम बिछा कर बैठे हुए बिहारी ऋतु का पहला रूपक रच रहे थे, मानो ! सुना है, वह जयपुर की खूबसूरती के ताप से एक बार बेहोश हो गये थे।

उल्लू ! मैंने अपने से कहा। मेरी मूर्च्छना टूटी। अच्छा हो, यदि तुम भी एक्टिंग छोड़कर किसी कुंज-फुंज में बैठ जाओ और गद्यकाव्य रचो। किसी की जिंदगी एक बार गद्यगीत बन जाये, तो उसमें प्रीत, रीत, मीत और पुनीत के कीटाणु बिना किसी यत्न के पनपने लगते हैं। गीतांजलि उसकी ऐसी-कम-तैसी करती रहती है। बत्रा के साथ यही तो हो रहा है। अबर म्यूजिक डाइरेक्टर एम० सी० बत्रा। मैंने उसके नाम का उच्चारण शैलजी की तरह होठ टेढ़े कर किया। शैलजी के स्वर में अभिमान होता है। मुझ में एक धूर्त व्यंग्य खिच गया था। उसने कितनी ही अच्छी-अच्छी धुनें बना कर सईदा को दी हैं। वह हमारे

नाट्य दल की सब से अधिक प्रशंसित अभिनेत्री है। किंतु उसने बत्रा को कभी कुछ नहीं दिया। वह उसे 'गजेटेड वेवकूफ' कहती है। जब-जब सईदा को जरूरत पड़ी और उसने अपने को देना चाहा, आकुल-अधीर वह मेरे ही पास आयी। बत्रा हमारे संबंध को जानता है, पर इस से उसकी विह्वलता में कोई कमी नहीं आयी, बल्कि वह ज्यादा आवेग-पूर्ण धुनें तैयार करने लगा है। सईदा रिमार्क देती है—तुम हरदम विलाप करते रहते हो!

बत्रा कोई उत्तर नहीं देता। कातर नेत्रों से उसे देखता रहता है। इसमें कोई शक नहीं कि दौलजी बड़ी सूझ-बूझ वाले निर्देशक हैं और उनके साथ काम करते हुए मुझे कभी हीनता का अनुभव नहीं हुआ। पर वह हर प्रोग्राम में जब कोई-न-कोई बहाना खोज कर बत्रा की तारीफ करने लगते हैं, तो सचमुच दयनीय हो उठते हैं। उनका मुंह ऐसे खुलता और बंद होता है कि बत्रा के पानदान की तरह लगता है। हाथ इस तरह से वेकाबू होकर उठते हैं, जैसे वह अभी किसी के घूंसा जड़ देंगे। उनको यों लस्त-पस्त देखकर एक बार मैंने सईदा के कान में फुसफुसा दिया था, "कैसियस बनने से इनका मुकाबला होना चाहिए!"

सईदा ने पल भर मेरी आंखों में मस्ती से झांका था।

"तुम बत्रा को कभी एप्रिशियेट नहीं कर सकते!" उसका स्वर बदला हुआ था।

"तुम करती हो?" मैंने छींटा दिया।

"हां, वह प्रतिभाशाली संगीतज्ञ है।" सईदा ने ठसक और ठमके से कहा।

"तो फिर गजेटेड वेवकूफ कौन है?" मैंने कोंच दिया।

"तुम!" वह हिकारत के साथ उबल पड़ी।

मैं अपमान का घूंट पी कर रह गया। मेरी जबान पर कांटे रेंगने लगे थे।

एक डेढ़ हफ्ते सईदा से बोलचाल ठप रही। वह तन गयी। मैं कस गया। फिर जब दौलजी ने 'कस्तूरी-मृग' उठाया और उसके नोट्स बनने शुरू हुए, तो सईदा ने सुझाया, "विन्नू से पूछ कर देख लें। मैं

समझ में सतीश का रोल और कोई नहीं कर सकेगा।"

तब मैं हिल गया था। मैंने संदेह से सूंघना चाहा कि सईदा के स्वर में मेरे प्रति मखौल तो नहीं है। नहीं, वह दृढ़ थी और सबके सामने मेरी श्रेष्ठता को स्वीकार कर रही थी। उस दिन से मैंने भी स्वीकार लिया कि सईदा मंच पर न किसी की अवहेलना करती है, न अनावश्यक सराहना। वह उसी हद तक ढील देती है कि धागा उसके हाथ में बना रहे और छूटे नहीं।

पहले की ही तरह वह मुझसे गुडी-मुडी हो गयी थी, पर उसकी स्थिरता ने मुझे दहला दिया था। सईदा की यह लीचड़ विशेषता मेरे लिए ईर्ष्या की वस्तु बन गयी थी। मैं चाहता भी, तो उसकी तरह टिकाऊ लीचड़ नहीं हो सकता था। अस्थिरता और अव्यवस्था को तो मैंने अपने गुणों की प्रथम पंक्ति में बिठा रखा था। बेखटके मेरे समूचे व्यक्तित्व पर उनको शीर्षक के रूप में टांका जा सकता था। मेरे पैंदा नहीं है, इसे मैं एक संपन्न गरिमा में लपेट कर स्वीकारता था और मुदित होता था। यह मेरी दरियादिली थी। पर शिवदत्त ने एक रोज लताड़ते हुए कहा था, "इससे बढ़ कर बेशर्मी और कायरता क्या हो सकती है !"

स्साला जर्नलिस्ट ! मेरा मुंह कड़वा हो गया। मुझसे पूछा जाये, तो शिवदत्त जैसा घिनौना व्यक्ति दुनिया में दूसरा नहीं था। कांइयांपन उसकी नजरों से झरता था। चेहरे पर मलबे का ढेर लगा रहता था। हंसता था, तो लगता था, मानों जबड़े खोल कर इर्द-गिर्द के लोगों के मांस में दांत गड़ाना चाहता है। उसकी भौंहों में इतना कांदा-कीचड़ था कि शहर के तमाम गटर उसकी तुलना में कमजोर पड़ते थे। हरदम अपने दैनिक अखबार को, जिसमें वह उपसंपादक था, बगल में खोंसे रहता था। सांस्कृतिक गतिविधियों से लेकर, खेल-कूद, बाजार-भाव और न मालूम कौन-कौन से चितकबरे स्तंभ वही लिखता-देखता था। मिलने पर 'नमस्कार' के बदले 'शाबाश' कसना उनकी आदत थी और इस प्रकार अपने उम्र-चालीसा को वह एक झूठमूठ की बुजुर्गियत से ढंक लेता था। बोलना तो दूर, मुझे उसकी तरफ देखने तक में दिक्कत मह-

सूस होती थी। पर वह मेरे साथ भलमनसाहत से पेश आता था। अक्सर मैं उससे कतरा जाने के तरीके ईजाद करता रहता था। उसकी समीक्षाओ पर ध्यान नही देता था। यह उसके लिए तकलीफ का विषय था।

तकलीफ ! पहले सिर्फ औरतो को होती थी। माहवारी के समय। आजकल सबको होने लगी है। इस जुमले ने उचक कर मेरे होंठ छुए और मन चंगा हो गया।

एक गुदगुदी लड़की साइकिल पर चढ़कर पिंडलियां दिखा रही थी। क्या इसके पास दिखलाने के लिए और कुछ नहीं है ? मैंने प्रश्न किया। एक पल बाद उत्तर भी मुझमे बाग देने लगा है, इसके पास वह भी है, जिसके दिखलाने से बदबू पैदा होती है। एक घाव, जो पंद्रहवा पार करते-करते सड़ने लगता है। लगाओ, चाहे जितना मरहम लगाओ, वह तो सड़ेगा ही। सड़ना और सड़ाना उसकी नियति है। नियति नही, जीवन-लीला !

मैंने नोट किया, लड़की के नाक-नक्श सुदर नही थे। वक्ष का उभार अवश्य मोहक बनाया गया था। उसने एक हाथ साइकिल के हैंडिल पर और दूसरा नजदीक खड़े लड़के के कंधे पर टिका रखा था। लड़का भेदभरी नजरो से लड़की का तराशा हुआ उदर-स्थल देख रहा था, उसमे खुली नाभि का लावण्य दहाड़ें मार रहा था, लो मुझे ले लो ! लड़का लेने के लिए तैयार था, पर थोड़ा डर रहा था। मैं खीज पड़ा। ऐसे डरपोक छोकरों की आखें फोड़ देनी चाहिए, ताकि वे किसी सौंदर्य को देख ही न सकें। शुरू-शुरू मे तुम भी तो कितना डर गये थे ! मैंने टोका ! डाटा खुद को। लज्जित हो गया। लड़की जाने के लिए उतावली थी। उसका दाया पैर पैडल पर दबाव दे रहा था। मेरी इच्छा हुई कि साइकिल के पिछले पहिये को पक्चर कर दू, नुकीली चाबी से, ताकि लड़का कुछ देर तक और रूप के सामीप्य का आनद ले सके। लेकिन मेरी इच्छा हास्यास्पद थी। न लड़की को कही जाना था न लड़के को। उन्हें अपने सुख को वही ढोते रहना था। विवशता थी। वे एक विज्ञापन मे थे, जो विश्वविद्यालय के मुख्यद्वार का सामना रहा था और पैदल आने-जाने वालो को अपनी कंपनी की साइकिल

नये मॉडल की ओर आकर्षित करने में सक्षम था।

एक लिफाफा मेरी जेब में सिकुड़ा हुआ था। मैं पोस्ट आफिस की तरफ मुड़ गया। यह लिफाफा बंबई जायेगा। वहां मेरा प्रिय क्रिकेट-खिलाड़ी रहता है। कल वह रणजी ट्राफी में छः रन पर आउट हो गया। मैंने उसे सिर्फ दो शब्द लिखे हैं—डूब मरो !

लाइब्रेरी से दो छात्राएं बाहर आयीं और बतियाने लगीं। वे शोध वाली थीं। क्लास वाली छात्राओं के चेहरे बेफिक्री में उड़ते-दमकते रहते हैं, जबकि शोध वाली दुश्चिताओं की रेल-पेल में चलती हुई पुतलियां नजर आती हैं। वे अस्त-व्यस्त रहती हैं। बुझी-बुझी बोलती हैं। डूबी-डूबी देखती हैं। स्यापा मनाती हुई चलती हैं। उनका यह हाल अध्ययन के भार की वजह से नहीं, शादी न हो पाने की वजह से होता है। धीरे-धीरे मेरी यह धारणा मजबूत होती जा रही है कि किन्हीं कारणों से विवाह में असमर्थ लड़कियां ही अपना समय शोध में गुजारती हैं। जो विवाह कर लेती हैं, उनके लिए शोध की बजाय प्रतिशोध मुख्य हो जाता है।

"तुम बैंक जा रही हो ?" एक छात्रा ने पूछा।

"हां, वहां मेरा खाता है।" दूसरी मिनमिनायी।

"कित्ते हैं, उसमें ?"

"पैंसठ रुपये।" उसने कहा। और मुझे निकट पाकर, इस खयाल से कि मैंने सुन लिया होगा, घबरा गयी। मैं ढाढ़स बंधाता हुआ मुस्कराया। वह झेंप गयी और पीठ देकर दूसरी तरफ जाने लगी। उधर बैंक नहीं था। उसकी चाल में एक हीन रहस्य के प्रकट हो जाने की सकपकाहट थी। क्या पैंसठ रुपये पर कोई वर राजी हो सकता है ? पैंसठ रुपये एक, पैंसठ रुपये दो, पैंसठ रुपये तीन ! डाक डिब्बे में चिट्ठी छोड़ते हुए मैंने नीलामी बोल दी। लिफाफा खरखरा कर गिर गया। अब उसका पंथ मुझ से अलग था।

सहकारी भंडार के सामने एक महिला, जो अपने अंग-प्रत्यंग की छटा और छलना से किसी लेक्चरार की बीवी प्रतीत होती थी, धूप निगल रही थी। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि उस तराजू के पलड़ों पर टिकी थी,

जिसमे दुकानदार गुड़ तौल रहा था। यह गुड़ खायेगी तो और भी चिप-चिपी हो जायेगी। फिर इसपर मक्खियां भिनभिनायेंगी। चीटियां बिल खोदेंगी। मैंने पर्याप्त गंभीरता से निष्कर्ष दिया, पर वहां मेरी सुनने वाला कौन था ! गुड बिक रहा था। गडबड हो रही थी।

मैंने फैसला किया कि इस गड़बडी में दखल नही दूगा। कोई कुछ भी करे, जहर खाये, धतूरा पिये, मुझे क्या लेना-देना है ! मैं क्यों चिंता मे पड़ू ! मैं चकराया और बुक-स्टाल पर रुक कर नवीन प्रकाशनों की सूची टटोलने लगा। उसमें दम नहीं था। जासूसी और कोर्स की किताबों की भरमार थी।

मैं 'थियेटर' वाली पंक्ति पर खोजती निगाहें दौड़ाने लगा।

शेक्सपियर छाया हुआ था, अंग्रेजी में। अनुवाद में चार-पांच हिंदी के नाटक अपने लेखकों की दुर्दशा का रोना रो रहे थे !

'मैन इक्वल मैन' और 'द वेजिटेबल' के बीच में हैराल्ड पिंटर का 'द केयरटेकर' फंसा पड़ा था। मैंने उसे निकाल लिया। सरसरी तौर पर कुछ पेज पलटे। पढ़ा हुआ था। पहले खरीद ले गया था और पसंद आने पर शैलजी को पढ़ने के लिए दिया था। वह पढ़ तो नहीं पाये, अलबत्ता किताब कहीं रख कर भूल गये।

मैंने नाटक ले लिया। काउंटर पर पैसे चुकाये और एक अतिरिक्त उत्साह से उसके मुखपृष्ठ को घूरता हुआ बाहर आ गया।

"विन्नू !"

मैं ठिठक गया। यह आवाज इला की थी। जिधर मे आयी थी, उधर घूमकर देखा। वही थी। जितेंद्र के साथ। दोनों गोल्ड स्पाट की बोतलें मुंह से लगाये रेस्तरां के सामने की बेंत-बुनी कुर्सियों पर बैठे थे। इला के पांवों के पास एक गोरैया फुदक-फुदक कर जाने क्या चुग रही थी ! उसकी चोंच का चांचल्य मुझे अच्छा लगा। विश्वास से भरा।

जितेंद्र ने उठ कर मुझसे हाथ मिलाया। इला मुस्कराती रही। उसमें अपनापे की पुलक थी। बैठने पर इला ने मुझे कंधे पर छुआ और बोली, "मुबारक !"

रात को नाटक में मेरा अभिनय उसने पसंद किया था। कहने लगी, "तुमने तो मुझे अभिभूत कर दिया! मैंने उसी वक्त जित्तन को झकझोर दिया, देखो, यह है मेरा भाई! हाल को पागल बना देता है।"

जितेंद्र की आंखों में मुक्त प्रशंसा थी। उसने मुझे गोल्ड स्पाट देते हुए कहा, "हम बाद में तुम्हें देर तक ढूंढते रहे, पर किसी ने कुछ नहीं बताया।" शैलजी बोले, 'मैं भी उसी भलेमानस को तलाश रहा हूं। लोग उससे मिलना चाहते हैं' कहां चले गये थे, तुम?"

"घर। मेरे सिर में तेज दर्द हो गया था।" मैंने धीमे-से कहा।

"मुझे विन्नू पर गर्व है।" इला ने मुझे स्नेह से, फिर जितेंद्र को एक ऊंचाई से निहारते हुए कहा, "लड़कियां इस के बारे में सवाल पूछ-पूछकर मेरी जान खाती रहती हैं!"

"तुम विन्नू के लिए एक सूचना-केंद्र खोल दो!" जितेंद्र हंसा।

"लड़कियां किसी की जान खाती हैं, या धक्के! यह भोजन उनके लिए सुपाच्य होता है!" मैं लापरवाही से बोला।

"यह इन्सल्ट है!" जितेंद्र ने इला को उकसाया।

वह होंठ विचकाकर साड़ी की पटलियां ठीक करने लगी।

"क्या बात है, तुम आज वैद्यराज की तरह बोल रहे हो?" जितेंद्र ने मुझे छेड़ा, "सुपाच्य! यह तो उन्हीं के शब्दकोश में मिलता है।"

"मैं सीधा धन्वन्तरि औषधालय से चला आ रहा हूं।" मैंने गोल्ड स्पाट की तरलता को अंदर खींचते हुए कहा।

"हूं, वहां क्यों गये थे? मस्तिष्क-रोग का इलाज करवाने?"

"नहीं बवासीर की वजह से!"

इला शरारत से मुसकरायी। वह जानती थी, जितेंद्र जिन दिनों बवासीर से पीड़ित-परेशान था, मैं उसे एक वैद्यराज के पास ले गया था। उनकी दवा से वह ठीक भी हो गया था।

"आज तुम्हारा कालेज बंद है?" मैंने इला से मजाक किया।

वह झेंप गयी, "खाली पीरियड है।"

जितेंद्र के संग मटरगश्ती करते हुए, रंगे-हाथों पकड़े जाने पर, वह यही बहाना उगलती थी। असल में मैं उसे पकड़ता नही था, चिकोटता था। वैसे डास की ट्यूटर होने के कारण वह अधिकतर फुरसत में रहती थी। और जितेंद्र को तो अपनी फैक्टरी की नेतागिरी में डोलने के सिवा कोई 'कारज' ही नही था।

"इनके यहां कभी कुछ नही होता ! कोई गर्ल्स कालेज इतना ठंडा हो सकता है, अचरज का विषय है !" जितेंद्र बोला।

"क्या तुम वहां भी हड़ताल करवाना चाहते हो ?" मैंने उसके निठल्लू नेतृत्व को कुरेदा।

"हां-आ, हो जाये तो अच्छा ही है !" जितेंद्र ने कहा।

"मुरारीलाल के क्या हालचाल हैं ?"

इला के इस प्रश्न से मैं कुछ शर्मिंदा हो गया। सहसा हम दोनो के मध्य खून का रिश्ता आ खड़ा हुआ और ताबड़तोड़ वार करने लगा।

इला मुझ से ढाई साल छोटी थी। मां के मरते ही वह पिता से बिल्कुल कट गयी। मां उन्हें किसी तरह जोड़े हुए थी। पिता ने इला पर पाबंदियों का भार डालना शुरू किया। प्रतिक्रिया में इला ने मौनी वाले मामले को लेकर तूफान मचाया, हालांकि वह अंदर से एकदम तटस्थ थी। एक रोज पिता ने हाथ चला दिया। इला ने भी उनका मुंह नोंच लिया। बाद में होल्डाल बांधा, अटैची में कपड़े डाले और वह होस्टल में शिफ्ट कर गयी। न मैंने चाहा न उसने कि मनाने-बुझाने और संधि समझौते का लिजलिजापन पैदा करने की कोशिश हो। शनैः-शनैः शांति हो गयी।

मैं चुप रहा, तो इला ने फिर पूछा, "मुरारीलाल मजे में हैं ?"

वह पिता का उपहास करके बदला ले रही थी। बदला लेने में मैं भी हिचकता नही था, पर जितेंद्र की उपस्थिति ने मुझे [illegible] में डाल दिया, बल्कि मैं इला की नीचता को कोसने लगा।

जितेंद्र भावहीन था। पर मुझे लगा, वह [illegible] मुस्करा रहा है। उसकी पतली मूंछों के कटाव में मुझे एक क्रूर खुशी का [illegible] मिला। मैं कड़वा हो गया। इस दबाव से नहीं कि पिता का अपमान है

रहा था, इस अहसास से कि मुझे तुच्छ समझ लिया गया था। उनपर प्रहार करने के लिए माध्यम मैं था और इसलिए निकृष्ट भी।

छिनाल ! मैंने बहन को गाली दी परंतु, इस गाली ने भी मुझे ही अपमानित किया। तब मैंने उबलती नजरों से जितद्र को देखा। दुष्ट ! मन नहीं भरा। भड़वा ! रंडी का यार !

लेकिन मैंने खुद को दबोचा, रंडी कौन है ? इला ? मेरी जीभ चिहुंककर दातों के बीच में आ गयी और कट गयी। मैंने बोतल रख दी। खाली। आंखें झपकाकर छुटकारा पाने का उपाय खोजने लगा। इला अपने में बंद थी। उसके माथे की शिकनें बता रही थीं कि वह अतीत में है, या किसी चक्रव्यूह में।

"पिता की चर्चा छोड़ो !" मैंने बड़े भाई की तरह इला की ओर देखा, पर मेरे कंठ में गिड़गिड़ाहट थी और एक दरिद्र बरबरी—यह एक अप्रिय प्रसंग है।

इला गरदन में खम और तीक्ष्ण मुस्कराहट में खिचती हुई बोली, "मेरा यह सबसे प्रिय प्रसंग है !"

"जितेंद्र से भी ?"

मैंने तनाव कम करना चाहा। मेज को थपथपाने लगा, इस तरह मानो साथ-साथ गुनगुना रहा था। होंठों पर गुनगुनाहट की कुछ बूंदें थीं।

"हां, जितन से भी !" इला [illegible] हो उठी थी और मुस्करा रही थी।

मैं खिसिया गया। जितेंद्र की [illegible] हाथ मलने लगा। एक अंगुली में पुखराज की अंगूठी थी, और [illegible] शान से [illegible] हुई।

"अब चलूं !" मैं खड़ा होकर [illegible] को [illegible] लगा।

"कहां जाओगे !" जितेंद्र ने पूछा।

"रेडियो स्टेशन।"

"[illegible] मारने के लिए ?"

मैं आकाशवाणी पर [illegible] का और उसकी [illegible] के लिए बदनाम था—वह भी [illegible] [illegible] करने आता है ! [illegible]

"आज तीन तारीख हो गयी है। मुझे तनख्वाह लेनी है।"

"तनख्वाह किस बात की ?"

"हवाखोरी की !" मैंने कंधे हिलाये, हंसने लगा, "ओ० के० इला !"

इला ने पर्स समेत हाथ उठा दिया। कुंद-सी मुसकरायी।

"कल पोलोविक्ट्री में मिलोगे ?" जितेन्द्र पीछे से चिल्लाया।

मैं चलते-चलते ठिठक गया, मुड़ कर पूछा, "क्या है वहां ?"

"एक जोरदार फिल्म है—लारेंस आव अरेबिया।"

जितेंद्र की आखें चमक से भर गयी।

"'पीटर ओ'टूल' तो तुम्हारा फेवरिट है !" इला जोर से बोली।

"आऊंगा। दस बजे।" मैंने हवा में कहा। हवा से कहा। हवा मुझे डंस रही थी। उससे अलहदा होकर मैं एक झपट के साथ बाजू के टायलेट में घुस गया और पेंट के बटन खोल दिये।

वहा फिनाइल की गंध थी। सफेदी को सींचती हुई। संजीदगी और एक बेअसर सात्विकता थी। कुछ लोग निहत्थे-से खड़े थे, पर विकट ढंग से 'कुछ' कर रहे थे। मैं भी उनकी तरह टांगों पर टंग गया और 'कुछ' करने लगा, यह सोचते हुए कि इसमें कोई हर्ज नहीं है। धार की गूंज उठते ही खयाल आया कि मैं ज्यादती कर रहा हूं। इस तरह की आवाज में एक पौराणिकता और कोई मर्म की बात होती है, जो किसी को भी उलझन में डाल सकती है। मैंने आसपास के सहकर्मियों को देखा। वे विचित्र ओज में थे। फफोलों के फट जाने और रिसते पानी के निकल जाने से जो राहत-भरा वर्तमान मिलता है, वह उनके चेहरों पर था। उस वर्तमान का एक टुकड़ा लेकर मैं सड़क पर आ गया।

एक रिक्शा को इशारे से बुलाया। वैसे वह बिना बुलाये भी मेरी ही ओर आ रहा था। उसके खोल में पहुंचकर लगा, दुनिया का मातम अपने से बाहर है। उसके बारे में फिक्र करने की जरूरत नहीं है। वह दिनोंदिन घुसी हुई कढ़ी बनती जा रही है। उसके झोल में पिता, इला, जितेंद्र, मौसी, बत्रा, सईदा और भी बहुत-से मति-मंद महाजन स्वीमिंग कर रहे हैं। वे मुझे भी अपने साथ लेना चाहते हैं, पर मैं मौका देखकर बच निकलता हूं और किसी रिक्शा के खोल को ओढ़कर सुरक्षित

हो जाता हूं। ऐसी थोथी सुरक्षा कब तक काम देगी ?

आकाशवाणी के लान में शैलजी बैठे थे, जूते खोलकर। एड़ियों पर दूब घिस रहे थे। सामने हेमा थी, डिक्टेशन लेने की मुद्रा में, उत्कंठित। हेमा को ले कर कुछ दिनों से हमारे नाट्य दल में एक तनातनी पैदा हो गयी थी। शैलजी एक तरह से उसे अपनी असिस्टेंट मानते थे, पर अन्य जनों को वह जरा भी नहीं सुहाती थी। मुझे भी हेमा का अहंकार अखरता था। वह मध्यप्रदेश के किसी नरेश की परित्यक्ता रानी थी और करीब छः-सात माह से जयपुर के रामबाग पैलेस में रह रही थी। शैलजी ने जितना बताया, उसके अनुसार हेमा फिल्मों में भी काम कर चुकी थी। वहां का वातावरण अनुकूल न पाकर रंगमंच की ओर आकृष्ट हुई थी। अभी तक उसने हमारे साथ किसी नाटक में भाग नहीं लिया था, पर सभी प्रस्तुतियों के प्रति उसकी उपेक्षा हमसे छुपी नहीं थी।

इस वक्त, वह पूजा-घर में बैठी किसी कुलीन हिंदू स्त्री की तरह लग रही थी। निबुई साड़ी। पल्लू से सिर ढंका हुआ। कुहनियों तक का जरी वाला ब्लाउज। माथे पर रोली का टीका। गले में मंगल-सूत्र। लाख की चूड़ियां। मेंहदी-शोभित हाथ। इन सबके बावजूद आंखों में एक घटिया स्वांग, अंदर की ओछाई को ढंकने का।

मैंने शैलजी को देखा। उनकी प्रखर दृष्टि भी मेरी ओर थी। खुले पैन से वह गरदन खुजा रहे थे। सामने कापी में कुछ रेखाएं और अक्षर उलझ कर पड़े थे। उलझने के लिए वहां और था भी क्या ? गाछ दम रोके खड़े थे और पत्तियों ने हिलने-डुलने की सौगंध खा रखी थी। इतनी गहन स्थिरता थी कि लगता था, इसका हिसाब करना मुश्किल है। रिक्त, सब कुछ रिक्त ! भव्य, सब कुछ भव्य ! दुम हिलाओ। पंजे फैलाओ, मुंह मटकाओ। इस स्थिरता को किसी तरह भंग करो।

विधान सभा-भंग ! अनुशासन-भंग ! प्रेम-भंग ! दाम्पत्य-भंग ! रंग-भंग ! मैं अपने अंदर के मसखरे पर हंसा। यह चूकता नहीं है। मौका देखा और फूट पड़ा। ऊलजलूल। अच्छा है, इसका पहेलियां बुझाने और आग लगाने का ढंग अच्छा है। चुपके-से आयेगा और बिना किसी की सुने जाने, मन-मरजी से, डंडा करके चला जायेगा। सबका खिलौना

और खसम हैं।

मैं एकाउंट्स सेक्सन की तरफ मुड़ गया।

हर क्षण बेरस और,स्याह था। कभी ठीक न होने वाली एक बीमारी तमाम कोने पर फैलकर गिरी हुई थी। दीवारों पर छिपकलियां थीं। सजग। ताक में। लपककर कीड़ों को निगल जाती थीं। बौने अपने-अपने बिलों में विरक्त भाव से घूम रहे थे। वे एक दूसरे को इस तरह देखते थे, जैसे कोई किसी को पहचानता ही न हो। उसके हाथ कभी फाइलों में, तो कभी पतलून की जेबों में गुम हो जाते थे। फिर उन्हें खोज पाना कठिन था। पांवों के लिए पहले मुझे भ्रम हुआ कि वे मेजों के नीचे होंगे, पर तुरंत यह साफ हो गया कि वे हैं ही नहीं। उनकी जरूरत भी नहीं महसूस की जा रही थी। देखने के लिए चश्मे थे, गोल-गोल कांच वाले, और आंखों का इस्तेमाल नहीं किया जा रहा था। नाक को उतार कर लिफाफे में रख दिया गया था। सांस लेने के लिए दो छेद काफी थे। इसी तरह जीभ निकाल कर दराज में बंद कर दी गयी थी। उसकी भी व्यर्थता स्पष्ट थी। मुझे राहत मिली, यह सोच कर कि व्यक्ति चाहे, तो कितनी जल्दी कितनी चीजों से छुटकारा पा सकता है।

लौटा वहां से, तो मन उड़ान पर था। तनख्वाह मिलने की खुशी ही सच्ची खुशी होती है, यह मैंने बार-बार के अनुभवों के बाद जान लिया है। धन हो, तो धनाधन के मजे आते हैं। एक दफा मैं पूरे चार घंटे एक लड़की से बदनपच्ची करता रहा, पर कोई रस नहीं आया, हालांकि लड़की काफी रसीली थी और छूते ही झरने लगती थी। मैं सिर्फ इस फिक्र में था कि जब यह उठेगी तो क्या दूंगा? वे कड़की के दिन थे और अपनी घड़ी तक बेच-चुका था।

"बिन्नू, एक मिनट!" शैलजी ने धीमे-से पुकारा।

हेमा की निगाह में भी स्निग्धता और अपनी सुंदरता की एक मोहक लौ थी। मैं उधर चला गया।

"एक मकान किराये पर चाहिए।" शैलजी ने कहा।

"किसके लिए?" मैंने पूछा।

"मैं रामवाग छोड़ना चाहती हूं।" हेमा ने तनिक झिझक के साथ कहा, "वहां प्राइवेसी नहीं है।"

"मकान कहां पर हो ?" मुझे हेमा की झिझक अच्छी लगी। रानीजी का नखरा उतरा तो नहीं !

"वापू नगर या 'सी' स्कीम !"जवाव शैलजी ने दिया।

"कोशिश करूंगा कि कोई अच्छा फ्लैट मिल जाये।"

"कम-से-कम चार कमरों का हो।" हेमा ने होंठ टिमटिमाये। लिपस्टिक की सुर्खी अनिश्चित-सी हो उठी।

मैं अनमना होने लगा। अपने प्रति एक तीखा आरोप ऐंठने लगा। मैं ऐसे छिटपुट सौंदर्य की ओर वगैर सोचे-समझे क्यों फिसल जाता हूं ? वितृष्णा की झोंक में मेरे पांव चल पड़ने को हुए कि शैलजी वोले, "अगले हफ्ते से मैं 'एवं इंद्रजित' शुरू कर रहा हूं।"

मैं चमक गया, इस एक वाक्य से। दिल्ली में 'एवं इंद्रजित' देखा था, तभी से शैलजी पर जोर डाल रहा था कि यह नाटक खेलें। उनकी ओर से हमेशा एक ही उत्तर मिलता —वादल सरकार को समझने की कोशिश कर रहा हूं।

"तय कर लिया है ?" मैंने प्रसन्नता को अप्रकट रखकर पूछा।

"हां। तुम इंद्रजित वनोगे। हेमा मानसी···"

अचानक मुझे किसी पहाड़ पर ले जाकर अंधेरे खंदक में धक्का दे दिया गया। हेमा ! मानसी !

"इंद्रजित-अमल-विमल-कमल और मानसी ! और हेमा ! इंद्रजित एवं हेमा ! नहीं, यह नहीं हो सकता। यह गलत है।"

शैलजी-नाटककार-मानसी-एवं हेमा-एवं विनोद। मैं अस्तव्यस्त हो उठा। ग्रुप में सिर्फ सईदा ही मानसी को 'सही' रूप दे सकती है। लेकिन शैलजी सोचते हैं कि इधर सईदा उनके हाथों से निकलती जा रही है। वह उससे नाराज हैं। शायद अव हेमा को उसके मुकावले में लाना चाहते हैं। क्या हेमा इस योग्य है ? और क्या सचमुच सईदा को नीचा दिखलाकर शैलजी जीत जायेंगे ? मुझे लगा, साफ-साफ वात कर लेना जरूरी है।

"मेरा खयाल है, मानसी के चरित्र को सईदा ज्यादा अच्छी तरह से निभा पायेगी।"

शैलजी की आखों मे एक तिलमिलाहट उभरी और डूब गयी। हेमा का चेहरा फक पड़ गया। अपनी घबराहट को छुपाने के लिए उसने होंठो की किनार को सख्त कर लिया। मुझे किसी की रत्ती-भर परवाह नही! मैंने स्वय से कहा और कठोर हो गया। मैंने अनुभव किया, वह हेमा जैसी रंगी-पुती स्त्री के सामने मेरा अपमान कर रहे हैं। कोई धमाका करो और यह साबित कर दो कि तुम्हारा अलग अस्तित्व है। तुम किसी के गुलाम नहीं हो। हेमा शैलजी को खरीद सकती है, विनोद को नहीं।

"अगर सईदा को मानसी का रोल न दिया गया, तो मेरे लिए इंद्रजित बनना मुश्किल होगा!"

मैं तेज कदमो से बाहर आ गया। दूर जाकर इच्छा हुई कि एक बार शैलजी और हेमा के बिगड़े-तने हुए चेहरे देख लू, फिर टाल गया।

धूप बादलों की छलनी से छन-छनकर गिर रही थी। तार-तार सीधी। उसका स्पर्श सुखद था। सुखद और सनसनीखेज। किसी के पीछे जासूस की तरह लग जाने की ख्वाहिश हो रही थी। सहसा कुछ सूझा और मैं एक गली से लगकर खड़ा हो गया। मन में कंपकपी थी, पर उससे ज्यादा खुली हंसी।

'पांच बत्ती' पर ट्रैफिक का शोर था। रोशनी लाल हुई और एक कतार रुक गयी। फिर हरी कौंध उछली और रेला बह गया। एक साहब कंधे पर हवाईबैग लटकाये धीमे-धीमे मेरी तरफ आ रहे थे। निकट आने पर मैंने उन्हें अंगुली से छुआ। वह चौंके। फिर अपने चौंकने पर लज्जित होकर चलने लगे। इस बार मैंने उनका हाथ थाम लिया। वह एक कदम पीछे हटकर मुझे घूरने लगे। उनकी आखों की पुतलियां बंदूक की गोलियों की तरह मेरा निशाना साधने लगी और स्थिर हो गयी। मैंने फुसफुसा कर कहा, "साहब, माल है!"

वह पल-भर के लिए सन्नाटे में आ गए। इसी बीच उनका चेहरा ढीला पड़ गया। मुझपर झुकते हुए पूछा, "क्या बात है?"

"एक छोकरी है, साहब, यहीं, इसी गली में !"

सकपका कर वह एकदम पिघल गये। इधर-उधर देखते हुए दबे सुर में बोले, "कहां है ? कित्ते की है ? खतरा तो नहीं है ? चलो !"

वह गली में मेरे पीछे-पीछे चलने लगे।

"कोई खतरा नहीं है, साहब ! हमेशा आपकी खिदमत करते आये हैं ?" मैंने नाटक किया, "गुजराती माल है। पसंद आये, तो उसी हिसाब से पैसा दीजिये।"

एक तिमंजिले मकान के सामने रुक कर मैंने ऊपर के छज्जे की तरफ इशारा किया। वहां कोई स्त्री हमारी ओर पीठ किये चोटी गूंथ रही थी। मैंने 'साहब' को सीढ़ियां चढ़ने के लिए कहा। वह एक क्षण हिचके, फिर जल्दी-जल्दी चढ़ने लगे। सीढ़ियों में सीलन-भरा अंधेरा था। मैं उन्हें काफी ऊपर चढ़ाकर तेजी से पलटा और भागकर उतरने लगा। गली में आकर ऐसी दौड़ लगायी कि हांफते-हांफते और हंसते-हंसते बेदम हो गया।

'साहब' को छकाने से मन में तरी आ गयी थी। एक ठेले वाले से नमकीन काजू लिए और उन्हें टूंगता हुआ घर आ गया। तबीयत थी कि मौसी के हाथ का बना खाना खाऊंगा। मक्का की चुपड़ी हुई रोटी और सांगरी का सूखा-खट्टा साग। मजा आयेगा। फिर तानकर सोऊंगा। देर तक। कई रातों की नींद बा[illegible]।

कुछ नहीं। वही सनन-सनन-सनन-न-न मानों कोई लुहार धौंकनी से घुटी-घुटी फूंक दे रहा हो और उसकी फेंट से लकड़ी के छिलके इधर-उधर हो जाते हों। बस। नहीं। इस तरह नहीं चलेगा। एक बार विचार किया कि मौसी को पुकार लूं, लेकिन शर्म आयी। समान उम्र वाली उस स्त्री को 'मौसी' कहने से तो बेहतर है, अपने को नगा करके कोड़ों से पीटूं।

असमंजस को चीरता हुआ मैं आंगन में आ गया। उतरती हुई धूप की छायाएं लंबी होकर पड़ी थीं। किचन के आगे एक तरफ जूठे बरतनों का ढेर पड़ा था और उनपर नल का पानी चू रहा था। उसकी टप-टपा-टप के सिवा कोई स्वर वहां नहीं था। मैंने मुआयने की नजर से इस 'बंटाढार' को देखा। चौ-तरफा भूल वह गयी। मन कड़वा हो गया था। बिखरा-बिखरा फूहड़पन। बेतरतीब चीजें। धूल। गंदगी।

एकाएक मेरी आखें फटकर टंग गयीं। पिता के बंद कमरे के सामने मौसी सकपक-सी खड़ी थी और पंजों के बल उचक-उचककर दरवाजे के शीशों में झांक रही थी।

मैंने उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए जूते बजाये। वह भयभीत-सी मुड़ी। मुझे देखा और भागकर चौक के खंभे के पीछे छुप गयी। हथेलियों से चेहरा ढंक लिया। फफक-फफककर रोने लगी।

जी में आया कि कस कर डांट दूं। उसकी बेहूदगियों से मैं वाकिफ था। खाली-ठाली वह प्रायः ऐसे तमाशे करती रहती थी। परंतु कुछ सोचकर मैंने भी दरवाजे के कांच से भीतर झांका और कांप गया। पिता अपने पलंग पर अधनंगे बैठे थे। जांघिया घुटने के नीचे झूल रहा था। दायां हाथ जांघों के बीच था। बेतरह हांफ रहे थे। चेहरा तमतमा गया था।

एक गिलगिला अंधकार मेरी आखों में समा गया। उतनी ही तीव्रता से गुस्सा। धीरे-धीरे गुस्सा गलने लगा। और समस्त ससार मेरे लिए रूखा-पराया, छली और नीच हो गया। उसमें मेरा होना एक बेबुनियाद कमीनगी की तरह था। अंदर पिता पसीने से लथपथ थे। बाहर मैं उनका पसीना पी रहा था। चुल्लू लगाकर। वह वह आया

नालों में, नदियों में, झीलों में।

"तुम रो क्यों रही हो ?" मैंने मौसी को टोका। मेरी आवाज एक अंतहीन चीख थी।

"तुम भी तो रो रहे हो !" मौसी ने सिसकियों के बीच कहा।

अरे ! मैं भी फूट-फूटकर रो रहा था ! इतने आंसू अब तक कहां थे ? गाल तर थे। गला भीग गया था। मुझे ताज्जुब हुआ। आंसुओं के इस तरह निकल आने पर।

"रोओ मत !" मैंने मौसी को और अपने को समझाया। मेरा कंठ रुंधा हुआ था——यह सर्वनाश है, सर्वनाश !

हम दोनों एक छोर तक आकर शांत हो गये। बिल्कुल शांत। चेहरा भी निर्विकार और शांत था। तभी फटाक् से दरवाजा खुला। पिता दहलीज पर खड़े लुंगी कस रहे थे। उनका चेहरा भी निर्विकार और शांत था।

ओम् शांति···शांति···शांति ! मैं इस फुसफुसाहट के साथ निचुड़ता चला गया। आखिरी बूंद तक। 

# प्रस्थान

छत पर, जहां फटी हुई पतंगें और गांठदार धागों के बहुरंगी गुच्छे पड़े थे, मैं चुपचाप खड़ा था। आंगन में एक मनहूस सन्नाटे की कंपकपी थी। कोई आवाज, कोई हलचल नही, पर मैं नीचे उतरने का साहस नही जुटा पा रहा था। कहीं एक छोटा-सा भय था, जो मुझे अंदर से मुट्ठी की तरह कसे हुए था और खुलने नही देता था।

पिता ठेला लाने के लिए बाहर गये थे। जब वे जा रहे थे, रुलाई का एक गुब्बारा मेरे गले और होठों के बीच कस गया था और मैं भागकर ऊपर चला आया था। बाद में मुंडेर से मैंने पिता को गली के आखिरी मोड़ पर ओझल होते हुए देखा था। वे धोती की एक किनारी को पकड़कर उठाये हुए तेजी से जा रहे थे। पहली बार, मुझे उनका इस तरह चलना अखरा और मैंने मुह फेर लिया।

धूप लगभग नही थी। अडे की जर्दी-सा दिन धीरे-धीरे उतर रहा था। एक कौवे को मैंने मरी हुई छिपकली जैसी कोई चीज ले जाते हुए देखा। मन कसैला हो गया। थोडी दूर जाने पर वह चीज उसकी चोंच से छूटकर गिर पडी। कौवा किकियाता हुआ चक्कर काटने लगा।··· एक बेचैन-सी गंध सिर उठा रही थी, मेरे चारो ओर। अपनी सास का आवागमन मुझे कष्टकर प्रतीत होने लगा।

दो-चार सफेद धब्बो के साथ, जिन्हे बादल या उनका भ्रम कहा जा सकता था, आकाश एकदम अनाकर्षक लग रहा था। बुखार में पिये हुए

नालों में, नदियों में, झीलों में।

"तुम रो क्यों रही हो ?" मैंने मौसी को टोका। मेरी आवाज एक अंतहीन चीख थी।

"तुम भी तो रो रहे हो !" मौसी ने सिसकियों के बीच कहा।

अरे ! मैं भी फूट-फूटकर रो रहा था ! इतने आंसू अब तक कहां थे ? गाल तर थे। गला भीग गया था। मुझे ताज्जुब हुआ। आंसुओं के इस तरह निकल आने पर।

"रोओ मत !" मैंने मौसी को और अपने को समझाया। मेरा कंठ रुंधा हुआ था—यह सर्वनाश है, सर्वनाश !

हम दोनों एक छोर तक आकर शांत हो गये। बिल्कुल शांत। चेहरा भी निर्विकार और शांत था। तभी फटाक् से दरवाजा खुला। पिता दहलीज पर खड़े लुंगी कस रहे थे। उनका चेहरा भी निर्विकार और शांत था।

ओम् शांति···शांति···शांति ! मैं इस फुसफुसाहट के साथ निचुड़ता चला गया। आखिरी बूंद तक। □

## प्रस्थान

छत पर, जहा फटी हुई पतंगें और गांठदार धागो के बहुरंगी गुच्छे पड़े थे, मैं चुपचाप खड़ा था। आगन में एक मनहूस सन्नाटे की कंपकंपी थी। कोई-आवाज, कोई हलचल नही, पर मैं नीचे उतरने का साहस नही जुटा पा रहा था। कहीं एक छोटा-सा भय था, जो मुझे अदर से मुट्ठी की तरह कसे हुए था और खुलने नही देता था।

पिता ठेला लाने के लिए बाहर गये थे। जब वे जा रहे थे, रुलाई का एक गुब्बारा मेरे गले और होठो के बीच कस गया था और मैं भाग-कर ऊपर चला आया था। बाद में मुडेर से मैंने पिता को गली के आखिरी मोड़ पर ओझल होते हुए देखा था। वे धोती की एक किनारी को पकड़कर उठाये हुए तेजी से जा रहे थे। पहली बार, मुझे उनका इस तरह चलना अखरा और मैंने मुह फेर लिया।

धूप लगभग नही थी। अंडे की जर्दी-सा दिन धीरे-धीरे उतर रहा था। एक कौवे को मैंने मरी हुई छिपकली जैसी कोई चीज ले जाते हुए देखा। मन कसैला हो गया। थोड़ी दूर जाने पर वह चीज उसकी चोंच से छूटकर गिर पड़ी। कौवा किकियाता हुआ चक्कर काटने लगा।''' एक बेचैन-सी गंध सिर उठा रही थी, मेरे चारो ओर। अपनी सास का आवागमन मुझे कष्टकर प्रतीत होने लगा।

दो-चार सफेद धब्बों के साथ, जिन्हें बादल या उनका भ्रम कहा जा सकता था, आकाश एकदम अनाकर्षक लग रहा था। बुखार में पिये हुए

पानी की तरह वेस्वाद। मकानों और दरख्तों की लंबी कौंध के वाद, आकाश के फीकेपन से सटा हुआ, एक गहरा नीला रंग चमक रहा था। अस्पष्ट-सी आकृति के साथ। नौवत पहाड़···पिछले महीने मामा के आने पर हम सब वहां गए थे। खूब अच्छा लगता था। नंगे पांव चट्टानों पर भागते-भागते मेरे तो तलुवे छिल गये थे। पम्मी के अंगूठे में चोट आयी थी और वह देर तक नाक वहाती रोती रही थी। मामा कभी पिता से, कभी पम्मी से मजाक करते हुए टहलते रहे थे।···उन्हीं दिनों मेरा वी० ए० के पहले साल का नतीजा निकला था और साहित्य में अच्छे नंवर लाने पर मामा ने मुझे सोने की जंजीर वाली घड़ी खरीदकर दी थी। घड़ी देखकर सभी दोस्तों को मुझसे ईर्ष्या हुई थी। रवि को भी। वह तो एक-डेढ़ हफ्ते तक मुझसे वोला भी नहीं था। रास्ते में कहीं मिलता तो सफाई से आंखें मोड़ लेता! लेकिन, मामा के जाने के वाद पिता उस घड़ी को पौने दामों में वेच आये और मेरे लिए कोई छोटी-मोटी नौकरी ढूंढने लगे! घटनाएं तेजी से घट रही थीं।···इस वीच हमारा रुई का गोदाम जल चुका था और पिता का व्यापार विल्कुल ठप्प हो गया था। कस्वे में मदद करने वाला कोई था नहीं। मामा को लिखा तो वहां से कटे हुए कोने वाला पत्र आया···तैरते हुए मामा को पुरी के समुद्र ने निगल लिया था!···

सीढ़ियों पर धम्म-धम्म की आवाज हुई। जरूर पम्मी होगी। मां के वीसियों वार टोकने के वावजूद वह इसी तरह पैर पटकती हुई चढ़ती है।

"भैया!"

पुराने जमाने की तंग घेर वाली फ्राक में अव वह अजीव-सी लग रही थी। उसके हाथ गीले आटे से सने थे।

"नीचे चलो।"

पम्मी के स्वर का उत्साह मुझे चुभा। कांच की किरच की तरह। पर मैंने अपने को संभाल लिया।

करने को कुछ था नहीं, इसलिए मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया।

वरामदे में वहुत-सा सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। चारपाइयां,

संदूक, पीपे, कुर्सियां, बरतन···मिट्टी के तेल की बोतल औंधी हो गयी थी और किसी बड़े मुल्क के नक्शे की तरह तेल इधर-उधर फैला हुआ था। उसकी बू से नथुने सुलगने लगे। एक जगह कुछ गठरियां, मातम-पुर्सी के लिए आये लोगों की तरह खामोश पड़ी थीं। मैंने उन्हें अनदेखा किया। भीतर घबराहट-सी महसूस होने लगी थी।

"तुमने लाल चींटे देखे हैं?"

पम्मी मेरा हाथ पकड़कर खींच रही थी।

कोयले की बोरियों के पीछे दीवार का पलस्तर उखड़ गया था और चूने के सूराखों में से कई लाल चींटे निकल आये थे। पम्मी ने आटे की गोलियां बनाकर उनके बिलों के सामने डाल दी थीं। वे कभी अपनी लंबी टांगों से उन गोलियों को खूदने लगते, कभी उन्हें मुंह में दबाकर दौड़ पड़ते। पम्मी को इस खेल में बड़ा मजा आ रहा था।

"तुम गोलियां बनाकर डालोगे?"

उसने चाव से पूछा और गीले आटे की कटोरी मेरी तरफ बढ़ा दी।

"नहीं।"

मैंने कठोरता से सिर हिलाया। पता नहीं, पम्मी का यह बचपना कब जायेगा! खीजता हुआ मैं बैठक में चला गया। बैठक सुनसान थी। दरवाजे के पास तीन साल पुराना एक कलेंडर टंगा था, जिसपर ढेरों मक्खियों के दाग थे। पीले, घिनौने, आलपिनों की तरह कागज में गड़े हुए दाग। ऊपर रोशनदान में रंगबिरंगे चिथड़े और घासफूस के तिनके फंसे हुए थे, जिन्हें शायद चिड़ियों ने इकट्ठा किया था। शाम का बेअसर उजाला चिथड़ों और तिनकों में दुबका हुआ था। नन्हे-नन्हे पंजों वाला एक कीड़ा खिड़की की बंद सिटकनी पर चढ़ रहा था। काफी चतुराई से। एक क्षण के लिए इच्छा हुई कि उसे झाड़कर गिरा दूं, पर एकटक उसे संभल-संभलकर चढ़ता हुआ देखता रहा। एक जगह पर उसकी टांगें परस्पर उलझ गयीं, किंतु वह गिरा नहीं, झूलता रहा।

तभी किसी ने जोर से दरवाजा भड़भड़ाया।

पिता लौट आये हैं। मैंने डरे-डरे मन से किवाड़ खोले। पिता नहीं थे। रवि था। चारखाने की बुशर्ट और कड़क पतलून में कसा हुआ।

"क्या हाल है, प्यारे!"

उसने हमेशा की तरह चहककर कहा। मैंने पकड़ना चाहा कि उसकी आवाज़ में कहीं व्यंग्य का पुट तो नहीं है।

"बाजार चल रहे हो?...मुझे कुछ चिट्ठियां डब्बे में डालनी हैं।"

वह बैठक के खालीपन को घूर-घूरकर देख रहा था। मुझे बुरा लगा।

"मैं क्या करूंगा चलकर?"

मैंने बड़ी मुश्किल से कहा। शब्द पत्थर हो गये थे।

"अरे चलो यार, बंटी में बैठकर चाय पियेंगे। चिट्ठियों का तो बहाना है।"

रवि ने मेरे कंधे पर हाथ मारा। 'बंटी' एक छोटा-सा ढाबा था, जिसमें हम अक्सर बैठा करते थे। उसकी सबसे बड़ी खासियत यही थी कि वह लड़कियों के एक स्कूल के ठीक सामने था।

करने को कुछ था नहीं, इसलिए मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया।

हवा! बाजार में आकर मैंने सबसे पहले हवा के तीखेपन को महसूस किया। रोंगटे खड़े हो गये। अचानक मुझे लगा कि आजू-बाजू की दुकानों के लोग मुझे ताज्जुब और भेदभरी निगाहों से देख रहे हैं। मेरे पांव दो-दो मन के हो गये। दिल में खून बर्फ की भांति जमने लगा और मैंने सिर झुका लिया।

रवि ने एक स्थान पर रुककर डाक-डिब्बे में चिट्ठियां डालीं। मैं उसकी पीठ के पीछे छुपा हुआ सा खड़ा रहा। यह सोचकर गुस्सा आया कि मेरा कद रवि से ऊंचा क्यों है?

'बंटी' में दस-बारह लोगों के बैठने के लिए जगह थी। आगे चार-पांच बेंचें और पीछे लोहे के स्टूल पड़े रहते थे। पास में बस-स्टैंड था, इसलिए यहां के ज्यादातर ग्राहक ड्राइवर-कंडक्टर ही होते थे। वे जब तक बैठे रहते, बात-बेबात हल्ला मचाते, गंदे किस्से गढ़ते और वनस्पति घी में तली हुई पूड़ियां चाय में डुबा-डुबाकर खाते रहते और चाय

गुटकते रहते।

हमने दो स्टूलों पर कब्जा किया।

रास्ते-भर रवि उस लड़की के बारे में बताता आया था जो अपनी बुआ के घर रहने के लिए आयी हुई थी और जिससे आजकल वह 'प्रेम' करने लगा था।

चाय पीते-पीते मैंने अपने को हीनता और कमजोरी से उबारना चाहा। मेरे भीतर तना हुआ जाला टूटने लगा। चाय की गर्मी और भाप ने मेरी नसों में ऐंठन शुरू कर दी।

"सुना है, तुम लोग आज जा रहे हो?" प्याले पर नजर टिकाये हुए रवि ने मुझ से पूछा। सहसा मैं कई कोनों में बंट गया।

"हां, हमने अपना मकान बेच दिया है।" अपनी मजबूत आवाज पर मुझे आश्चर्य हुआ।

"मालगढ़ी में···दो कमरे किराये पर ले लिए हैं। अब हम सब वहीं रहेंगे।" मैंने बात साफ की।

रवि गंभीर हो गया। फिर उसने अधीरता से कहा, "तुम इधर आते रहना।···मालगढ़ी तो नजदीक ही है।"

बंटी से निकले तो अंधेरा चढ़ चुका था।

"मुझे तो अभी एक प्रोफेसर के यहां जाना है।" कह कर रवि ने हाथ आगे बढ़ा दिया। पहली दफा उससे हाथ मिलाते हुए मैं सचमुच झेंप गया। काफी देर तक उसके हाथ का गुदगुदा स्पर्श मेरी दायीं हथेली से चिपका रहा।

जल्दी-जल्दी चलकर घर पहुंचा। एक विचित्र किस्म की उत्तेजना शरीर में झनझना रही थी।

गली में दो ठेले खड़े थे। एक में सामान भरा जा चुका था, दूसरा थोड़ा खाली था।

पिता बरामदे में एक गठरी को टटोल रहे थे। मुझे देखकर बोले, "तुम आ गये!"

पम्मी पास में लैंप लिए खड़ी थी। इशारे से उसने बताया कि पिता तुमपर बड़े नाराज हो रहे हैं।

मैं अपराधी की तरह वहीं खड़ा रहा। चुप्प।

"जाओ, अंदर से अपनी मां को लेकर आओ। चलने में देर हो रही है।"

पिता का आदेश पाकर मैं अंधेरे में आंखें चलाता हुआ मां के कमरे में गया। वहां कुछ नहीं था। लग रहा था, जैसे अंधेरा जीवित हो उठा है और सांस ले रहा है।

मैंने पुकारा, "मां !"

कोई उत्तर नहीं। सब कुछ स्याह; मुझे बहुत कम सूझ रहा था।

"मां !"

कोने में मुझे कोई चीज पड़ी दिखलाई दी। गठरी-सी। मैं पास गया। झुककर देखा, वह मां थी।

"उठो मां, चलने में देर हो रही है।"

मैंने उसे झकझोरा तो वह 'अहां-हां' करती हुई उठी। मैंने सहारा दिया। वह मेरे साथ चल पड़ी।

एक ठेले में मैंने मां को बिठाया। लैंप की रोशनी में मैंने देखा, उसकी आंखें बंद थीं और वह निःशब्द रो रही थी।

मां की बगल में पम्मी बैठ गयी।

दोनों ठेले चल पड़े। उनके साथ-साथ पिता।

उस क्षण भी मेरे पास करने को कुछ था नहीं, इसलिए मैं चुपचाप उनके पीछे-पीछे हो लिया। □

# दस्यु

चौक में आते ही सिराज की [illegible] दिखाई दी। [illegible] के सामने की बेंच पर पांव टिकाये वह [illegible] था। [illegible] नाक प्याले की गोलाई में डूब [illegible]।

कई दिनों बाद आसमान [illegible] और [illegible] रही थी। मैंने तय किया कि [illegible] लूंगा, फिर पूरे रास्ते [illegible] को देखता हुआ [illegible]। [illegible] पैलेस की नयी छतों का ध्यान हो आया। [illegible] गोरी औरतें बदन सेंकती हुई नजर आ [illegible] हैं। [illegible] ताजा, कितनी सफेद होती हैं। बिल्कुल [illegible]

कप वाले हाथ को [illegible] चिल्लाया, "ए मुर्गे, कहां जा रहे हो? [illegible]"

मेरा ख्याल है, [illegible] बन जाती है। वह जब-जब [illegible] है, [illegible] कपी की लहर पैदा कर देती है। सिराज [illegible] ऐसे यार कि एकबार जो [illegible] डी० के स्टोर में तांबे के तार [illegible]।

"क्या है, क्यों [illegible] रहे हो?" [illegible] कंधे पर हाथ मारा तो वह [illegible]। [illegible] और कोट के भीतर एक [illegible]

इसके कि हवा ठंड में तरंगें ले रही थी।

"फिलिप से मिले ?" उसने संजीदगी से पूछा।

"हफ्ते-भर पहले वह काफी-हाउस में दिखा था।" मैंने कहा

सिराज जोर से मुस्कराया जैसे उसने कुछ इच्छित पा लिया हो। गोल सिर आगे की तरफ झुक गया। उसके वाल अव खिचड़ी होने लगे थे और आपस में इस तरह चिपक गये थे मानो तेल से न भीगकर गोंद से भीगे हों।

"जल्दी वको, क्या वकना चाहते हो !" मैं उतावली में था।

वह अपनी ही मुस्कराहट पीता हुआ खड़ा रहा। आंखें किसी रहस्य के रंग में तीखी हो गयीं। मैं चिढ़ने लगा।

"मुझे नौ वजे जौहरी वाजार पहुंचना है। तुम्हें मेरी इन दिनों की व्यस्तता का पता नहीं है। पहले-सा वगड़वोंग में नहीं रहा। कामकाजी आदमी हूं।" अपना महत्त्व गांठते हुए मुझ में सुन्नता आ गयी।

मैं सव जानता हूं।

सिराज के अविश्वास-भरे स्वर ने मुझे पानी-पानी कर दिया।

वेपरवाही से उसने ढावे वाले को पुकारा कि चारमीनार का एक पैकेट दे जाओ। फिर उसका चेहरा एक गहरेपन में जाम हो गया। ठिठुरी-सी आंखें कांच की गोलियों की भांति ढुलकने लगीं। वह एकदम पस्त और रौंदा हुआ नजर आ रहा था और उसपर धूल की कई-कई परतें एक साथ चढ़ी थीं। यह वन रहा है, मैंने अपने को समझाया। इसके भीतर एक नहीं इक्कीस सिराज छिपे हुए हैं और उन सवका रंग-डौल अलग-अलग है।

*घिन को मसोसकर कुछ-कुछ गर्व-सा* जताते हुए मैंने सफाई दी कि सेल्समैन का धंधा होता ही ऐसा है। भाग-दौड़ न करो तो कुछ भी नहीं मिलता। फिर मेरे पास जिस कम्पनी का माल है, वह अभी मार्केट में नयी है। मुश्किल यह है कि लोगों की आदतें निश्चित हो जाती हैं और वे पुराने लेवल ही पसंद करते हैं।

सिराज अपने नथुने खुरचने लगा।

फिर ओठों में ठुंसी हुई सिगरेट को अंदर खींचा और धुएं में

मिचमिच करता खड़ा रहा। बहुत उलझे हुए स्वर में उसने कहा, "हमें फिलिप का साथ छोड़ देना चाहिए।"

"वह तो छूट ही चुका है। अब उसे फुरसत ही कहां मिलती है कि हमें लिपट दे। तुम क्यों नाराज हो?" मैंने सिराज मिया की तल्खी को कुरेदना चाहा।

"वह अपना भेद किसी को नही देता।" कहते-कहते उसकी उत्तेजना बढ गयी। दातों की दरार में पिच् करते हुए उसने थूका और नाक मसलने लगा।

मैंने हामी भरी कि तुम्हारा कहना सही है। वह शुरू से ही घुन्ना है, पर उसकी जान-पहचान कई ऊचे लोगों मे है और उसका फायदा उसे मिलता है। वक्त मिला तो शाम तक मैं उससे मिलने जाऊगा।

"मत जाना उसके पास, भूलकर भी नही।" सिराज मुझे बेकली से घूरते हुए फुसफुसाया।

मैं उस फुसफुसाहट पर, जो बासी मुह की बू से लबालब थी, हंस दिया। "देखो भई, असल चीज है एप्रोच। सुना है कृषि के उपमंत्री फिलिप को मानते हैं। वह उनसे सिफारिश कर दे तो मैं अच्छी तरह पोजीशन ले सकता हू। माल की खपत पंचायतो में ज्यादा है। एक भी आर्डर मिल जाये तो फिर मुझे पांव फैलाने में दिक्कत न होगी।"

"तुम जिस आदमी के बारे में इतनी बातें कर रहे हो, उस पर हत्या का आरोप है।"

सिराज ने अचानक ढेला फेंका। मैं इस हमले के लिए तैयार नही था। इससे पहले कि मेरा भय बाहर फूटे, वह बताने लगा कि किस तरह फिलिप ने तीन दिन तक अपनी चाची को कमरे में बंद रखा। भूखे-प्यासे। वह उससे वसीयत का ब्योरा जानना चाहता था। जब कुछ भी पता न चला तो गुस्से में आकर उसने चाची का गला घोंट दिया।

मेरे जबड़े खिच गये। "क्या तुम्हे पक्का मालूम है?"

सिराज की भौंहें तन गयी। मेरे चेहरे की उदासी को नोट कर उसने एक भद्दी-सी गाली दी, फिर उबल पडा, "तुम मुझे समझते क्या हो? मैं तुम्हारी तरह लगूर नही हूं और न ही दलाली करता हू,

समझे ! जो कुछ कह रहा हूं, उसका एक-एक हर्फ सही है। वह फिलिप शुरू से ही हरामी था...।"

इस बयान के बाद उसने एक आंख दबाई और धीमे-धीमे खांसने लगा। "तुम तो स्साले उसकी आस्तीन के चूहे बने हुए हो न, देखना तुम्हारी भी मिट्टी पलीद होगी। पुलिस किसी को बख्शेगी नहीं। जायसवाल किस तरह लीपापोती करके फिलिप को बचाने की कोशिश कर रहा है लेकिन उस बुड्ढे की अब कौन सुनता है ? इस दफे उसे भी जूते में हलवा परोसा जायेगा। मुझ से कुछ छुपा हुआ नहीं है।"

जायसवाल समाज-कल्याण-विभाग में असिस्टेंट-डायरेक्टर थे। खासे चौमूं, पर धाकड़। बंदर-बांट में तेज होने के कारण काफी कमाई कर चुके थे। मौली फिलिप की माडल थी, पर जब जायसवाल को कुछ शक होने लगा तो उन्होंने अपनी लड़की को हुक्म दिया कि वह राखी बांधकर फिलिप को भाई बना ले। ऐसा ही हुआ। बच्चे वाली बात तो डेढ़-दो साल बाद सामने आयी। जायसवाल ने तब फिलिप पर ट्रक चढ़वा दिया था ; लेकिन उसकी सिर्फ साइकिल ही टूटी और वह बच गया। सिराज उस समय फिलिप का खासमखास था। उसने एक नाटक खेला। चाची को जायसवाल के पास सिखा-पढ़ा कर भेज दिया। वे उसके आगे झोली फैलाकर रोती रहीं। आखिर बर्फ पिघलने लगी और रास्ते खुल गये।

सिराज ने कहा, "जाओ, अपने दोस्त से मिल लो, अभी उसके हथकड़ियां नहीं पड़ी हैं।"

मेरा माथा सन्नाटे में आ गया। आंखें धुंध से घिरने लगीं। कहां है वह दुष्ट, वह फिलिप का पट्ठा। निबौली-सा तीखा यह नाम मेरी जीभ पर घुलने लगा और मैंने अपनी नसों में कांपती उत्तेजना को तेजी से महसूस किया। सहसा मुझे लगा, यह तो सिराज है, यह टुच्चा-निकम्मा आदमी, इसे मैं खामख्वाह मुंह लगा रहा हूं। बिदके जानवर की तरह पीठ दिखाकर मैं वहां से भागा।

सड़कें बहुत लम्बी थीं या मैं ही फटे-पुराने कंबल की भांति चारों ओर पसर गया था। हर रफ्तार में शामिल होने की चेष्टा कर रहा

था, पर भीतर से एकदम जड़ हो चुका था।

मैं कहां जा रहा हूं ? जन-जीवन से भरे इन मैदानों में गेंद की तरह फिसलता हुआ। क्या दूसरों की ख्वाहिश ने मुझे पा लिया है और मैं अपने आप में तनहा होता जा रहा हूं ? एक जगह कुछ स्त्रियों के झुंड गड्डमड्ड हुए, उनमें फिलिप की चाची का तिकोना चेहरा चमका, अपनी पूरी रोशनी के साथ। वही अधखाये नाक-नक्श। फिर वह पटाखे की तहर छूटा और पास की इमारत से टकराकर गुम हो गया।

उस वर्ष। मास की दुकान से निकाले जाने के बाद सिराज मेरे साथ रह रहा था। दौड़धूप के बाद उसे प्रूफरीडरी का काम मिल गया और बी० ए० की तैयारी भी करने लगा। मैं सिराज की इस धुन पर खूब हंसा था, लेकिन जब उसने इम्तहान पासकर लिया तो हंसी में आश्चर्य का भाव आ गया था।

दीक्षान्त समारोह के बाहर शामियाने के नीचे फिलिप से मुलाकात हुई थी। वह तीन-चार रुपये लेकर फोटो खींच रहा था। लड़के-लड़कियां उत्साह में थे। कंधों पर गाउन। हाथ में डिग्री। क्लिक। थैंक्स। सिराज का चौखटा लेते वक्त उसने मजाक किया कि शक्ल मीर जाफर से मिलती है।

"मीर जाफर कौन ?"

सिराज ने बुद्धूपने में सवाल कर डाला तो वह गंभीर हो गया। कुछ क्षण बाद ऊंचाई से बोला, "एम० ए० करने का इरादा हो तो हिस्टरी में करना।"

धीरे-धीरे उस फोटोग्राफर को हमने अपना मित्र मान लिया था। वक्त-बेवक्त उससे रुपये भी उधार लिये जा सकते थे। वह हम दोनों से अधिक धनी था। उसकी पहुंच और चतुराई का दायरा कहां तक है, इसकी पुख्ता जानकारी हमें तब मिली, जब वह अपने छोटे-से कमरे से निकलकर बड़े-बड़े कमरों वाले एक ऊंचे मकान में पहुंच गया। वहां इलायची का दाना कुतरती हुई मौली किसी सुयोग्य वर का इंतजार कर रही थी।

जाड़े की दुपहरी में वह तिमंजिला मकान भयानक दिखलाई दिया।

आगे कांटों की बाढ़ थी। लान में उनका नौकर सिर झुकाये बैठा था। घुटनों तक गमछा लपेटे। तल्लीन। वह पाजामे में नाड़ा डाल रहा था।

"फिलिप से बोलो कि मैं आया हूं।" मैंने बाहर से हांक लगायी।

"मालिक तो नहीं हैं स्साव।" उसने बिना मेरी ओर देखे जवाब दिया।

"कहां गये हैं ?"

"यह तो मालूम नहीं।"

"बीवी जी तो होंगी ?"

"वो भी उनके साथ गयी हैं ?"

"फिलिप ने चाची को क्यों मार डाला ?" मैंने चिढ़ में चिल्लाकर पूछा ताकि पड़ोसी सुन लें।

वह चुप रहा।

"लगता है, तुम्हारा भी इस हत्या में हाथ है ?"

"होगा, स्साव !" नाड़ा उसकी पकड़ से छूट गया था और वह परेशान-सा नेफे में तिनका डाल रहा था।

मैं एक दम भभक पड़ा।

"कह देना फिलिप से, कि वह कुत्ते की मौत मरेगा।"

"कह दूंगा, स्साव।"

जायसवाल जी ने उसे बचाने की कोशिश की तो उन्हें गधे पर बिठाकर शहर में घुमाया जायेगा।"

"मुझे भी घुमाएंगे क्या ?" उसके गालों की हड्डियां हिलीं।

"तुम्हें भी घुमाएंगे।"

"तब तो बोत अच्छा रहेगा, स्साव।"

"तुम जेल में सड़ोगे।" मैंने जज की तरह अंतिम फैसला दे दिया और लौट पड़ा। मौसम मनहूस लग रहा था। एक पल के लिए शंका हुई कि वह गढ़वाली नौकर पीछे से मुझपर वार न कर बैठे। मुड़कर देखा। वह अब टांगों में पाजामा डाल रहा था। सब कुछ खतरनाक लगने लगा। हर चीज की बुराई प्रकट हो कर सामने आ

रही थी। फिलिप ने यह क्या किया ? उसकी चाची तो उसे बेहद चाहती थी।

एक तांगा स्टेशन की तरफ जा रहा था। मैंने उसे इशारे से रोका। और उछलकर अगली सीट पर टिक गया। दो सवारियां पीछे थीं। उन्हें देखने की चाह सिकुड़ गयी और हल्की सिसकारी के साथ मैंने कांख में हाथ दबा लिये। सर्दी बढ गयी थी।

पोलो-विक्ट्री के गोल घेरे में सिनेमा की भीड़ लहरा रही थी। किसी तालाब की भांति। शो खत्म हुआ था। एक खोपड़ी को मैंने गौर से देखा। बगल में दूसरी खोपड़ी, जरा सुंदर। जूड़े में फूल वाली।

मैं कूद पड़ा। तांगे वाले की ओर चवन्नी फेंकी और एन० सी० सी० के छोकरों की तरह लेफ्ट-राइट करता हुआ उस कोने की तरफ लपका, जहां फिलिप सपत्नीक उपस्थित था। वैसे दोनों अपनी गाड़ी के नजदीक पहुंच चुके थे।

'मौली !' मैंने आवाज दी। जाने क्यों फिलिप को पुकारने का जोश डूब गया और उसके लिए मुझे अपनेपर ही शर्म आने लगी।

वह मुड़ी। एक सुहावने ढंग से।

"हलो ! क्या हालचाल है ?" वही रस-भीगा कंठ। शब्दों में एक परिचित-सी खुशबू।

*मैं कमजोरी महसूस करने लगा।*

"कहां से आ रहे हो ?" फिलिप ने खुशदिली से पूछा, फिर खुद ही उत्तर गढ़ने लगा, "उसी नर्स के यहां से ?"

वह जानता था कि एक नर्स को लेकर मैं कांदास हूं और यह मालूम होने पर भी कि इधर उसका प्रेम अपनी पारी के कम्पाउंडर के प्रति ज्यादा है, मेरा मोहभंग नहीं हुआ है। रणनीति सिर्फ यह है कि वह नर्स मुझ से संबंध रखे तो अस्पताल में मेरी पैठ जम सकती है। तब मैं दवाओं की सप्लाई का काम भी कर सकता हूं। उसमें आमदनी अधिक है। सिराज ने एक बार इसी तरह एक नर्स के जरिये मामला बिठाया था पर फिलिप के अनुसार, वह 'संतोषजनक' मर्द नहीं निकला

और असफल हो गया।

"बच्चों को कहां छोड़ दिया ?"

मैंने बुझते-बुझते चर्चा शुरू की। असल में मैं पूछना चाह रहा था कि चाची कहां है? मेरा विचार था कि वह प्रश्न आते ही फिलिप सफेद पड़ जायेगा और उसकी ऐंठ सरकंडे की तरह सीधी होने लगेगी।

"उन्हें चाची के साथ गांव भेज दिया।" जवाब मौली ने दिया। "स्कूल बंद हो गये तो हमने सोचा दस-पांच दिन उन्हें शुद्ध हवा का सेवन कर आने दो।"

वह ओठों को तीखा बनाकर मुस्करायी।

'शुद्ध हवा का सेवन' का जुमला मेरा ही था और मैं इसे मौली के शहरीपन पर व्यंग्य के रूप में दुहराया करता था।

फिलिप ने कस कर शेव बना रखी थी और उसके चेहरे की धूप कुछ नीली-सी हो उठी थी। क्या मौली का भी हत्या में हाथ है ? वह अपने वक्ष पर झुक कर खड़ी थी और पूरे उभार के साथ उसके तीन चेहरे नजर आ रहे थे। शरीर की गठन और गुदगुदापन इतना साफ कि जैसे उसमें रुई भरी हुई हो। मेरे हृदय में कोई चीज कतरने लगी। जी में आया कि कहूं, तुम सबने मिलकर चाची को मार डाला है। फिर लगा, कहीं सिराज मनगढ़ंत तो नहीं बोल रहा था। वह और मैं फिलिप से डरते थे और उसे नीचा दिखलाने के मौके तलाशते रहते थे। बीच में एक आग थी, जो हर रोएं को जला रही थी। शायद ईर्ष्या। शायद विवशता।

"पिक्चर कैसी लगी ?"

मैंने अपने को अंधेरे खंदक में गिरने से उबारना चाहा। पांवों के नीचे जमीन फट चुकी थी और मैं उसमें आधा धंस चुका था।

पति-पत्नी एक-दूसरे की ओर देख कर हंसे। मैं तुरंत समझ गया कि फिल्म जरूर गंदी और अश्लील होगी। इसीलिए मुझे कुछ बताने में हिचक रहे हैं। मेरी नैतिक मान्यताओं से वे अच्छी तरह वाकिफ हैं और यह भी जानते हैं कि मैं बहुत कट्टर हूं।

"घर चल रहे हो ?" फिलिप ने पूछा। कुछ उदासीनता से। उसने

पाइप सुलगा लिया था।

"आज तो इतवार है, फुरसत मे ही होगे।" मौली ने सहमति की मुहर लगा दी। बोलते वक्त वह एक विशेष अंदाज मे आंखों को सिकोड़ लेती थी और ऐसा भाव देती थी, मानो लोग बहुत दूर हों, उसे साफ-साफ नजर न आते हो।

गाड़ी की गरमाहट थी और एक अजीब-सी गंध, जो मेरा रक्तचाप बढा रही थी। वे दोनों आगे बैठे थे। पिछली सीट पर पडा-पडा मैं जैसे अंतिम सासें ले रहा था।

मौली ने पीछे सिर टिका लिया। उसकी आखें वद थी। वह चंदन की ताजा कटी हुई शाख की भांति महक रही थी। स्वस्थ और शांत। साड़ी का छोर, दो छोटे-छोटे तकियो की तरह दिखते उसके खुले कधों से फिसल कर, मेरी तरफ आ गया था। सावधानी और कोमलता से मैंने उसे छुआ। रोमांच हो आया। तैरती हुई-सी उस गाड़ी मे मैं अपनी खोयी-बिखरी ताकत को बटोरने लगा।

तभी मेरे सामने वह सत्य कौंध आया। जलते हुए अंगारे की भाति लाल, प्रकाशमान। यह फिलिप बडा घाघ है। दुनिया की तमाम अच्छी चीजों पर इसने कब्जा कर रखा है। मौली तो बेवकूफ है। एक मूर्ख स्त्री ही ऐसे काइया पुरुष के साथ सट कर बैठ सकती है। लेकिन यह भी तय है कि शादी के बाद इसने फिलिप को अटकाना शुरू कर दिया है। जरूर इसके किसी और से सबध होगे, तभी हरदम इतनी मगन दिखती है। फिलिप ने तो बस इसे फास रखा है। मतलब साधने के लिए। इसीके पैसे पर मजे कर रहा है। हो सकता है, सिराज का कहना सच ही हो। लेकिन'''अगर फिलिप ने चाची की हत्या की होगी तो किस कारण से ?

यकायक मैं लपटो में घिर गया। तनाव से शरीर टूटने लगा। दायें हाथ के पजे को तानकर मैं फिलिप की ओर झपटा। इस हरामजादे का मैं गला घोंट डालूगा। फिर मौली मुक्त हो जाएगी। कुछ भी करने के लिए स्वतत्र। मैंने पजे को फिलिप के टेंटुए पर कस दिया और जोर लगाने लगा।

दम घुटने को आया तो मैंने वेचैनी से इधर-उधर देखा। फिलिप सुख से सिगार पी रहा था। धुंए के लच्छे बाजू के शीशे से टकरा रहे थे। एक पागल पंजे से मैं अपनी ही गर्दन दबोच रहा था। लंबी सांस लेकर मैंने साड़ी के उस हिलते हुए पल्लू को सहलाया और अन्यमनस्क हो उठा। फिर यह सोचकर कि मुझसे एक घिनौनी हरकत हो गयी है, अनिश्चित पछतावे में हथेलियां पीसने लगा। □

# हे भानमती

चौतरफा कोहरे का जाल तना हुआ था। कलकत्ता में जाड़े की पहली लहर आयी थी, रेंगती हुई। राघव रसेल स्ट्रीट के भीतर एक गली में मुड़ गया। घड़ी के हिसाब से दोपहर थी, पर धूप सिर्फ उजाले के अनगिनत हलके गहरे धब्बों में बदल गयी थी।

राख के रंग की एक बड़ी-सी इमारत थी। राघव को तिमंजिले पर पहुंचना था। स्वेटर के निचले हिस्से को प्यार से थपथपाते हुए उसने लिफ्ट की ओर देखा। वह निर्जीव पड़ी थी और अपने स्याह दरवाजे के कारण काल-कोठरी की भांति डरावनी लग रही थी। राघव सीढ़ियों की तरफ बढ़ गया। पहला तल्ला···एक बच्चे के रोने की आवाज। दूसरा तल्ला···हवा की रहस्यपूर्ण सांय-सांय में घुला हुआ रेडियो का स्वर। तीसरा तल्ला···राघव मुसकराकर गुनगुनाने लगा, 'इच्चकदाना बिच्चक-दाना दाने ऊपर···।' तभी उसे लगा, मानो पास ही किसी भाड़ में मक्का के कई भुट्टे भूने जा रहे हों। रिहर्सल अभी शुरू नहीं हुई है, उसने अनुमान लगाया और गाने लगा, 'लड़की ऊपर लड़का नाचे···दीवाना ···इच्चकदाना···'

अब वह उस कमरे के सामने खड़ा था, जिसमें से स्त्री-पुरुषों की बदशक्ल आवाजें बाहर फूटी पड़ रही थीं। राघव ने उसे भानमती का पिटारा नाम दे रखा था, क्योंकि नाट्य-दल की मालकिन जमुना झिंग-वाली को वह भानमती से कम नहीं समझता था। पिछले महीने

राघव को जमुना झिंगवाली का एक 'स्नेह-भरा' पत्र मिला था, जिसमें उसे एक नाटक में नायक की भूमिका निभाने के लिए आमंत्रित किया गया था। दिल्ली में उस वक्त राघव के पास कोई खास काम नहीं था, इसलिए वह तुरंत कलकत्ता के लिए रवाना हो गया था।

राघव हंसा, उस क्षण को याद कर···जब स्टेशन पर सबके सामने ही जामुनी रंगवाली जमुना झिंगवाली ने लपककर उसे अपने वक्ष से चिपका लिया था और आंखें बंदकर न जाने किस सुख में लीन हो गयी थी। राघव की सांसों में सहसा अधजले कपड़े की मितलाहट पैदा करनेवाली बू भर गयी और वह एकदम परे हट गया। जमुना झिंगवाली शायद उसके इस रुख से तनिक अस्तव्यस्त हो उठी थी। किंतु प्लेटफार्म से निकलते ही वह फिर चहकने लगी और कार में बैठकर तो उसने राघव के हाथ को इतनी बुरी तरह अपनी गोद में दबोच लिया था कि··· आशुतोष मुखर्जी रोड के उस छोटे-से होटल तक पहुंचने पर ही छुटकारा मिला।

भीतर घुसते समय राघव ने गंभीर-सा चेहरा बना लिया। शोर का एक रेला घूंसे की तरह उसके चेहरे पर आकर लगा। कुछ लोगों ने शायद उसे 'विश' भी किया, पर वह सिर झुकाये एक खाली कुरसी पर बैठ गया।

अभिनेता कनु भाई के अनुसार, एक वर्ष में वह कम-से-कम तीन उपन्यासों की खाल उधेड़ डालती थी और उनके अस्थि-पंजर मंच पर ला पटकती थी। जमुना झिंगवाली को मौलिक नाटकों से नफरत थी, किंतु वह अपने आपको लेखिका मनवाने के लिए जी-तोड़ प्रयत्न करती थी। उसने नाट्य-रूपांतर छपवा डाले थे और मुखपृष्ठ पर मूल लेखक की बनिस्वत अपना ही नाम दिया था।

राघव ने निगाह दौड़ायी। वैद्य हरिहरनाथ, जिसने आयुर्वेद की कोई उपाधि ले रखी थी और एक कपड़े की दूकान पर मुनीमगीरी करता था, हमेशा की तरह जोर-जोर से डॉयलाग रट रहा था। कमल टाटवाला, जो हाल ही में अपने मुहल्ले की गौसेवा समिति का सेक्रेटरी चुना गया था, एक गुजराती लड़के को स्वर के आरोह एवं अवरोह के बारे में बतला रहा था। कामिनी मुखर्जी आसपास की कुरसियों पर सतर्कतापूर्ण नजर घुमाते हुए जमुना झिंगवाली की निंदा में तल्लीन थी। उसका एकमात्र प्रेमी और श्रोता था—सूरजमल झिंगवाली। जमुना झिंगवाली का पति, जिसने जिंदगी में कभी मंच पर तो क्या, ग्रीनरूम में भी कदम नहीं रखा था, पर कामिनी की बातें सुनने के लिए रोज रिहर्सल में हाजिर रहता था।

राघव को कामिनी से सहानुभूति थी। वह उसे अच्छी अभिनेत्री मानता था, किंतु नाटक में राघव के साथ नायिका थी—जमुना झिंगवाली! एक बार राघव ने निर्देशक को यह समझाने की चेष्टा की भी थी कि कामिनी के साथ न्याय किया जाए···कि जमुना झिंगवाली उसकी मम्मी के बराबर लगती है, प्रेमिका नहीं···कि इस रूप में नाटक फ्लॉप जाएगा। सुनकर बुलाकीराम ने एक जन्मजात बधिर का-सा चेहरा बना लिया था और शून्य में ताकने लगा था।

"हलो, राघव!" कामिनी आसन बदलकर उसकी ओर मुड़ी, "तुम्हारी हीरोइन अभी नहीं आयी।"

"वो ऽऽ मैंने बतलाया था···न कि उसको आज राइटर्स बिल्डिंग जाना था—" सूरजमल झिंगवाली मिमियाता हुआ आगे भी कुछ कहने जा

रहा था कि कामिनी ने झिड़क दिया, "तुम चुप रहो।"

सूरजमल सिटपिटाकर अपना होंठ चूसने लगा।

"तुम क्यों सफाई देते हो ? मैं जानती हूं···वो तुम्हारी बीवी है और यह भी कि···कितनी और किस रूप में है ?" कामिनी की इस डांट ने सूरजमल को कछुए की भांति अपने खोलनुमा कोट में घुसा दिया। वह घबराकर नीचे झुका और एक कागज का टुकड़ा उठाकर जल्दी-जल्दी चबाने लगा।

"आप लोग···आम तौर से एक नाटक की तैयारी में कितना वक्त लेते हैं ?" विषय बदलने के लिए राघव ने पूछा।

"यह तो वही जाने···काली माता !" कामिनी व्यंग्य से हंसी, "हम सब ग्यारह बजे से यहां हैं···इतवार को यही समय रखा जाता है रिहर्सल के लिए···पर दो बज रहे हैं और उस महादेवी का अता-पता ही नहीं।"

"मुझसे तो कहा गया था कि एक महीने में सब हो जाएगा।"

"झांसा दे दिया गया आपको भी।"

"एक फिल्म के लिए भी मेरी बात चल रही है। कल ही बंबई से खत आया है।···अब तो जितनी जल्दी हो सके, यह नाटक स्टेज पर आ जाना चाहिए।...यहां और रुक पाना मेरे लिए संभव नहीं है।"

"मुझे भी एक बंगला-डॉकुमेंटरी मिल रही है। थिएटर छोड़ दूंगी मैं। क्या करें ऐसी सेठिया-बंसान में ? जाने कहां-कहां से एक्टर पकड़ लाती है वो महादेवी ! कोई रुईवाला, कोई जूटवाला, कोई पंसारी,

अनुभवी रंगकर्मी बुलाये जाएं और वे सबको प्रशिक्षण दें···"

तो भानमती ने जवाब दिया होगा, "हम बाहरवालों को रखते हैं जूते की नोक पर···हम थियेटर के बारे मे इतना कुछ जानते हैं कि उन्हें बीस साल तक सिखला सकते हैं—"

"हा, यही कहा।" राघव ने हामी भरी।

"पता है नितिन भैया को जब अवार्ड मिला तब भानमती नीद की गोलिया खाकर सोयी थी। किस्मत अच्छी थी कि डॉक्टर ने बचा लिया···।"

"लेकिन नितिन को पुरस्कार मिलने पर तो वो खुश हुए थे··· जीवन होम दिया है उन्होने थिएटर के लिए।"

"भानमती तो सोचती है कि सभी पुरस्कार या सम्मान सिर्फ उसी को मिलें, तभी उसका महत्त्व है।···नितिन भैया से तो उसको ऐसी ईर्ष्या हुई कि उल्टे-सीधे आरोप लगाकर उन्हे ग्रुप से अलग होने के लिए मजबूर कर दिया।"

"यह तो मैं महसूस करने लगा हू कि भानमती को राजनीति में जाना चाहिए था। वो···हर वक्त जोड़-तोड़ और उठापटक मे लगी रहती है।"

"कुछ रोज पहले उसने खबर फैलायी कि वह थिएटर से सन्यास ले लेगी। हम लोगो ने राहत की सास ली, लेकिन एक पखवाड़े बाद ही फिर गोटिया चलने लगी और वह प्रकट हो गयी—"

"मेरी हिरोइन बनकर !" राघव ने चुटकी ली।

"सच मुझे तुमपर बहुत तरस आता है।"

"तरस तो मुझे भी आता है, लेकिन अपनेपर नही—निर्देशक पर !"

"उसपर रहम खाने की जरूरत नही। उसने तो सदा ऐसे ही लब्बड़-सब्बड़ नाटक किये हैं और मच पर से अडे-टमाटर बटोरकर घर ले गया है।"

"भानमती अगर मा, बुआ वगैरह के रोल करे, तो फिर भी चल सकता है लेकिन ··"

"क्या बात करते हो, राघव ! वो तो पत्नी की भूमिका मे भी आने

के लिए तैयार नहीं है। जिंदगी-भर प्रेमिका के रूप में रहना चाहती है, किसी-न-किसी की···क्यों सूरजमल ?" कामिनी ने सूरजमल की वगल में अंगुली से कोंचा। वह हड़बड़ाकर खड़ा हो गया और मुंह में फंसे हुए कागज के पुर्जे फर्श पर थूकने लगा।

"छि: क्या करते हो, गंदे !"

सूरजमल घुड़की खाकर पांव घसीटता हुआ बुझा-बुझा-सा चल पड़ा, और वैद्य हरिहरनाथ के पास जाकर बैठ गया।

"आठ साल से वह झवरू मेरे पीछे पड़ा हुआ है," कामिनी ने सूरजमल की ओर इशारा किया, "कहता है—चलो, कहीं भाग चलें !" कामिनी की खिलखिलाहट छलक पड़ी, "क्यों भाग जाऊं मैं किसी के साथ ? मैं तो कलकत्ता में रहूंगी और मूंग दलूंगी भानमती की छाती पर।···राघव, अगर तुम यहां रहो तो हम लोग एक नया ग्रुप वना सकते हैं। ठंडे दिमाग से सोचना मेरी वात पर।"

"नहीं कलकत्ता में रहना मेरे लिए कठिन है। असल में···जो आर्टिस्ट एक वार दिल्ली के थिएटर में रम जाता है, उसका मन फिर कहीं और नहीं लगता।"

"दिल्ली में तुम्हारा मन किसके साथ रमा हुआ है ?" कामिनी ने ।

"ऐसा कुछ नहीं वहां।"राघव झेंप गया।

"कोई तो होगी ही !"

"नहीं इस तरह के मसलों पर सोचने की कभी फुरसत ही नहीं मिली मुझे।"

"तो अव सोच लो। भानमती के वारे में क्या खयाल है !"

दोनों वेतरह हंस पड़े, एक साथ।

"लो आ गयी वो ऽऽऽ"

कामिनी ने आंख से संकेत किया। राघव ने सिगरेट के धुएं के आर-पार देखा, जमुना झिगवाली चश्मे के पीछे अपनी चुंधी-चुंधी आंखें मटकाती हुई भद्दे ढंग से चली आ रही थी।

"वुलाकी वावू !" रिहर्सल-रूम के मध्य में रुककर उसने पुकारा।

बुलाकीराम उसकी तरफ तेजी से लपकता हुआ चला। जमुना झिंगवाली हांफती हुई एक कुरसी पर धम्म से गिर गयी। कई क्षणों तक सारे लोग उसकी लंबी गहरी सांसो की आवाज ही का मुआयना करते रहे।

"कुछ किया आपने ?" जमुना झिंगवाली ने सबसे पूछा।

बुलाकीराम ने जवाब दिया, "आपके बिना क्या हो सकता था ! हम इंतजार करते रहे।"

"कुछ तो करना चाहिए था, आपको।···हमारी जान को दो हजार झंझट लगे हैं। राइटर्स बिल्डिंग मे एक मीटिंग थी।"

"तो आपको कहला देना था हमे।···रिहर्सल का जो समय तय हो, सबको आना चाहिए।" राघव ने कहा। उसके स्वर में खीज थी।

कामिनी ने प्रशंसा-भाव से राघव की ओर देखा। जमुना झिंगवाली को तुरंत कोई उत्तर नही सूझा। फिर उसने हकलाते हुए कहा, "भई, हम माफी चाहते हैं। हम आज उलझ गये।···अच्छा, एक बुरी खबर भी है।" उसकी आवाज में अचानक सहक भर गयी, "चंद्रकात जोशी का निधन हो गया है।"

"चंद्रकात जोशी !" राघव चीख पड़ा, "यह कैसे हो गया !" उसका गला भर्रा गया और वह आगे न बोल सका।

"हमने तो अभी अखबार मे पढा। बडे अच्छे आदमी थे। दो साल पहले जब हम इलाहबाद गये थे तब उन्होने हमारे सम्मान मे एक गोष्ठी की थी।···बहुत प्रशसा की थी हमारी।···प्रतिभावान निर्देशक थे।··· चलो, उनके लिए शोकसभा करलें—फिर आज की छुट्टी ! हम एकदम थक गए हैं।···"

किसी की कुछ समझ मे नही आ रहा कि क्या किया जाए ! जमुना झिंगवाली खडी हो गयी, "एक लाइन बना लो सब और दो मिनट का मौन रखो।"

टेढी-मेढी लाइन बनी, किसी तरह। दो मिनट का मौन रखा गया। जमुना झिंगवाली नाक मे अगुली डालकर नथुने फडफडाती रही। फिर बोली, "अब जाओ। कल के लिए रिहर्सल का वक्त होगा—शाम साढे

के लिए तैयार नहीं है। जिंदगी-भर प्रेमिका के रूप में रहना चाहती है, किसी-न-किसी की···क्यों सूरजमल ?" कामिनी ने सूरजमल की बगल में अंगुली से कोंचा। वह हड़बड़ाकर खड़ा हो गया और मुंह में फंसे हुए कागज के पुर्जे फर्श पर थूकने लगा।

"छिः क्या करते हो, गंदे !"

सूरजमल घुड़की खाकर पांव घसीटता हुआ बुझा-बुझा-सा चल पड़ा, और वैद्य हरिहरनाथ के पास जाकर बैठ गया।

"आठ साल से वह झबरू मेरे पीछे पड़ा हुआ है," कामिनी ने सूरजमल की ओर इशारा किया, "कहता है—चलो, कहीं भाग चलें !" कामिनी की खिलखिलाहट छलक पड़ी, "क्यों भाग जाऊं मैं किसी के साथ ? मैं तो कलकत्ता में रहूंगी और मूंग दलूंगी भानमती की छाती पर।···राघव, अगर तुम यहां रहो तो हम लोग एक नया ग्रुप बना सकते हैं। ठंडे दिमाग से सोचना मेरी बात पर।"

"नहीं कलकत्ता में रहना मेरे लिए कठिन है। असल में···जो आर्टिस्ट एक बार दिल्ली के थिएटर में रम जाता है, उसका मन फिर कहीं और नहीं लगता।"

"दिल्ली में तुम्हारा मन किसके साथ रमा हुआ है ?" कामिनी ने ।

"ऐसा कुछ नहीं वहां।"राघव झेंप गया।

"कोई तो होगी ही !"

"नहीं इस तरह के मसलों पर सोचने की कभी फुरसत ही नहीं मिली मुझे।"

"तो अब सोच लो। भानमती के बारे में क्या खयाल है !"

दोनों बेतरह हंस पड़े, एक साथ।

"लो आ गयी वो ऽऽऽ"

कामिनी ने आंख से संकेत किया। राघव ने सिगरेट के धुएं के आर-पार देखा, जमुना झिगवाली चश्मे के पीछे अपनी चुंधी-चुंधी आंखें मटकाती हुई भद्दे ढंग से चली आ रही थी।

"बुलाकी बाबू !" रिहर्सल-रूम के मध्य में रुककर उसने पुकारा।

बुलाकीराम उसकी तरफ तेजी से लचकता हुआ चला। जमुना झिंगवाली हांफती हुई एक कुरसी पर धम्म से गिर गयी। कई क्षणों तक सारे लोग उसकी लंबी गहरी सांसों की आवाज ही का मुआयना करते रहे।

"कुछ किया आपने?" जमुना झिंगवाली ने सबसे पूछा।

बुलाकीराम ने जवाब दिया, "आपके बिना क्या हो सकता था! हम इंतजार करते रहे।"

"कुछ तो करना चाहिए था, आपको।···हमारी जान को दो हजार झंझट लगे हैं। राइटर्स बिल्डिंग में एक मीटिंग थी।"

"तो आपको कहला देना था हमें।···रिहर्सल का जो समय तय हो, सबको आना चाहिए।" राघव ने कहा। उसके स्वर में खीज थी।

कामिनी ने प्रशंसा-भाव से राघव की ओर देखा। जमुना झिंगवाली को तुरंत कोई उत्तर नहीं सूझा। फिर उसने हकलाते हुए कहा, "भई, हम माफी चाहते हैं। हम आज उलझ गये।···अच्छा, एक बुरी खबर भी है।" उसकी आवाज में अचानक चहक भर गयी, "चंद्रकांत जोशी का निधन हो गया है।"

"चंद्रकांत जोशी!" राघव चीख पड़ा, "यह कैसे हो गया!" उसका गला भर्रा गया और वह आगे न बोल सका।

"हमने तो अभी अखबार में पढ़ा। बड़े अच्छे आदमी थे। दो साल पहले जब हम इलाहबाद गये थे तब उन्होंने हमारे सम्मान में एक गोष्ठी की थी।···बहुत प्रशंसा की थी हमारी।···प्रतिभावान निर्देशक थे।··· चलो, उनके लिए शोकसभा करलें—फिर आज की छुट्टी! हम एकदम थक गए हैं।···"

किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा कि क्या किया जाए! जमुना झिंगवाली खड़ी हो गयी, "एक लाइन बना लो सब और दो मिनट का मौन रखो।"

टेढ़ी-मेढ़ी लाइन बनी, किसी तरह। दो मिनट का मौन रखा गया। जमुना झिंगवाली नाक में अंगुली डालकर नथुने फड़फड़ाती रही। फिर बोली, "अब जाओ। कल के लिए रिहर्सल का वक्त होगा—शाम साढ़े

के लिए तैयार नहीं है। जिंदगी-भर प्रेमिका के रूप में रहना चाहती है, किसी-न-किसी की···क्यों सूरजमल ?" कामिनी ने सूरजमल की वगल में अंगुली से कोंचा। वह हड़वड़ाकर खड़ा हो गया और मुंह में फंसे हुए कागज के पुर्जे फर्श पर थूकने लगा।

"छिः क्या करते हो, गंदे !"

सूरजमल घुड़की खाकर पांव घसीटता हुआ बुझा-बुझा-सा चल पड़ा, और वैद्य हरिहरनाथ के पास जाकर वैठ गया।

"आठ साल से वह झवरू मेरे पीछे पड़ा हुआ है," कामिनी ने सूरजमल की ओर इशारा किया, "कहता है—चलो, कहीं भाग चलें !" कामिनी की खिलखिलाहट छलक पड़ी, "क्यों भाग जाऊं मैं किसी के साथ ? मैं तो कलकत्ता में रहूंगी और मूंग दलूंगी भानमती की छाती पर।···राघव, अगर तुम यहां रहो तो हम लोग एक नया ग्रुप वना सकते हैं। ठंडे दिमाग से सोचना मेरी वात पर।"

"नहीं कलकत्ता में रहना मेरे लिए कठिन है। असल में···जो आर्टिस्ट एक वार दिल्ली के थिएटर में रम जाता है, उसका मन फिर कहीं और नहीं लगता।"

"दिल्ली में तुम्हारा मन किसके साथ रमा हुआ है ?" कामिनी ने छेड़ा।

"ऐसा कुछ नहीं वहां।" राघव झेंप गया।

"कोई तो होगी ही !"

"नहीं इस तरह के मसलों पर सोचने की कभी फुरसत ही नहीं मिली मुझे।"

"तो अव सोच लो। भानमती के वारे में क्या खयाल है !"

दोनों वेतरह हंस पड़े, एक साथ।

"लो आ गयी वो ऽऽऽ"

कामिनी ने आंख से संकेत किया। राघव ने सिगरेट के धुएं के आर-पार देखा, जमुना झिगवाली चश्मे के पीछे अपनी चुंधी-चुंधी आंखें मटकाती हुई भद्दे ढंग से चली आ रही थी।

"बुलाकी वावू !" रिहर्सल-रूम के मध्य में रुककर उसने पुकारा।

बुलाकीराम उसकी तरफ तेजी से लचकता हुआ चला। जमुना झिंगवाली हांफती हुई एक कुरसी पर धम्म से गिर गयी। कई क्षणों तक सारे लोग उसकी लंबी गहरी सांसों की आवाज ही का मुआयना करते रहे।

"कुछ किया आपने ?" जमुना झिंगवाली ने सबसे पूछा।

बुलाकीराम ने जवाब दिया, "आपके बिना क्या हो सकता था ! हम इंतजार करते रहे।"

"कुछ तो करना चाहिए था, आपको।...हमारी जान को दो हजार झंझट लगे हैं। राइटर्स बिल्डिंग में एक मीटिंग थी।"

"तो आपको कहला देना था हमें।...रिहर्सल का जो समय तय हो, सबको आना चाहिए।" राघव ने कहा। उसके स्वर में खीज थी।

कामिनी ने प्रशंसा-भाव से राघव की ओर देखा। जमुना झिंगवाली को तुरंत कोई उत्तर नहीं सूझा। फिर उसने हकलाते हुए कहा, "भई, हम माफी चाहते हैं। हम आज उलझ गये।...अच्छा, एक बुरी खबर भी है।" उसकी आवाज में अचानक चहक भर गयी, "चंद्रकांत जोशी का निधन हो गया है।"

"चंद्रकांत जोशी !" राघव चीख पड़ा, "यह कैसे हो गया !" उसका गला भर्रा गया और वह आगे न बोल सका।

"हमने तो अभी अखबार में पढ़ा। बड़े अच्छे आदमी थे। दो साल पहले जब हम इलाहबाद गये थे तब उन्होंने हमारे सम्मान में एक गोष्ठी की थी।...बहुत प्रशंसा की थी हमारी।...प्रतिभावान निर्देशक थे।...चलो, उनके लिए शोकसभा करलें—फिर आज की छुट्टी ! हम एकदम थक गए हैं।..."

किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा कि क्या किया जाए ! जमुना झिंगवाली खड़ी हो गयी, "एक लाइन बना लो सब और दो मिनट का मौन रखो।"

टेढ़ी-मेढ़ी लाइन बनी, किसी तरह। दो मिनट का मौन रखा गया। जमुना झिंगवाली नाक में अंगुली डालकर नथुने फड़फड़ाती रही। फिर बोली, "अब जाओ। कल के लिए रिहर्सल का वक्त होगा—शाम साढ़े

छः बजे।"

दड़बे की किवाड़ी खुलने पर जैसे मुरगे-मुरगियां बाहर भागते हैं, नाट्यकर्मी हलफलाते हुए निकल पड़े वहां से। एक दूसरे से टकराते, उलझते, निपटते और बचते हुए।

"राघव !" जमुना झिंगवाली ने आवाज दी।

राघव रुक गया। उसने कमीज का कॉलर ठीक किया।

"हम तुमसे कुछ जरूरी बातें करेंगे—अभी !"

राघव बैठ गया।

"राघव !" उसके स्वर में नाटकीयता और नमी थी, "हम अपने आदमी को छोड़ रहे हैं।"

"यह क्या हो गया है, आपको ? नहीं सहा जाएगा।"

"हमने तुम्हारे लिए भी एक शानदार कैरियर की बात सोच ली है। तुम अब यहीं रहोगे, कलकत्ता में—हमारे थिएटर ग्रुप के एक्जीक्युटिव डायरेक्टर बनकर। हर महीने अढ़ाई हजार वेतन, गाड़ी और मकान फ्री। हमने सब बंदोबस्त कर लिया है।"

"लेकिन मैं तो यहां नहीं रहूंगा।"

"कैसे नहीं रहोगे ? हम रखेंगे तुम्हें, और प्यार से रखेंगे।"

"नहीं, नहीं। इस नाटक के बाद मैं पहले बंबई···और फिर दिल्ली ंगा।"

रिहर्सल-रूम खाली पड़ा था। सुनसान। एक स्त्री। एक पुरुष। दोनों उस शून्य के नीचे बैठे थे।

स्त्री ने कुछ कहा। फिर पुरुष ने कुछ कहा। यह कहना और सुनना चलता रहा। रिकार्ड बज रहा था कि सुई अटक गयी। पुरुष खड़ा हो गया। स्त्री उससे लिपट गयी। तड़ाक ! पुरुष ने रिकार्ड तोड़ दिया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। सुई छिटक गयी। 'ओह, राघव !' जमुना झिंगवाली ने दांत पीसे।

ऊपर झूलता हुआ शून्य ठहरकर हंस पड़ा। □

# भुजंग

दरवाजे पर वह एक क्षण के लिए ठिठक गया। उसके मन में कुछ भी तय नहीं था और हवा बहुत जोर से चल रही थी, जिससे उसके भीतर का सब कुछ अस्थिर हो उठा था। जल्दी-जल्दी में उसने तय किया कि वह सिर्फ इस हवा से बचना चाहता है। हवा, जिसपर किसी का बस नहीं है। यह सोचकर उसने राहत महसूस की और एक किवाड़ को जरा-सा खिसकाकर अन्दर घुस गया। किवाड़ ने फर्श से लगकर हल्की-सी आवाज पैदा की, पर उसने लापरवाही से उसे पीछे छोड़ दिया। चार-पांच कदम चलकर वह फिर रुक गया और इधर-उधर देखने लगा। घर बहुत बड़ा था और उसमे लबे दालान के बाहर पुरानी कारीगरी वाले खूबसूरत खमे थे। पहली नजर मे उसे भय लगा किंतु तुरंत ही उसने स्वयं को एक उम्दा आश्वासन से भर लिया। वह अक्सर ऐसा करता है और अन्त में किसी-न-किसी ठिकाने से लग जाता है। तभी उसे लगा कि उसके अलावा भी यहां 'कोई' है—कोई, जिसे अभी सही-सही नाम नही दिया जा सकता, पर पहचाना जा सकता है। वह धीमे से हंसा, वैसे हंसने का कारण उसके सामने भी स्पष्ट नहीं था। इस उधेड़बुन के बीच उसने दुबारा उस पराये घर का मुआयना किया। फरवरी के आखिरी दिनों की मनहूसियत सब जगह थी। मैली चद्दर की तरह धूप जिस कोने मे यों ही पड़ी हुई थी, वहां तीन औरतें अपने-अपने ढंग से व्यस्त थी।

छः बजे ।"

दड़बे की किवाड़ी खुलने पर जैसे मुरगे-मुरगियां बाहर भागते हैं, नाट्यकर्मी हलफलाते हुए निकल पड़े वहां से। एक दूसरे से टकराते, उलझते, निपटते और बचते हुए।

"राघव !" जमुना झिंगवाली ने आवाज दी।

राघव रुक गया। उसने कमीज का कॉलर ठीक किया।

"हम तुमसे कुछ जरूरी बातें करेंगे—अभी !"

राघव बैठ गया।

"राघव !" उसके स्वर में नाटकीयता और नमी थी, "हम अपने आदमी को छोड़ रहे हैं।"

"यह क्या हो गया है, आपको ? नहीं सहा जाएगा।"

"हमने तुम्हारे लिए भी एक शानदार कैरियर की बात सोच ली है। तुम अब यहीं रहोगे, कलकत्ता में—हमारे थिएटर ग्रुप के एकजीक्युटिव डायरेक्टर बनकर। हर महीने अढ़ाई हजार वेतन, गाड़ी और मकान फ्री। हमने सब बंदोबस्त कर लिया है।"

"लेकिन मैं तो यहां नहीं रहूंगा।"

"कैसे नहीं रहोगे ? हम रखेंगे तुम्हें, और प्यार से रखेंगे।"

"नहीं, नहीं। इस नाटक के बाद मैं पहले बंबई...और फिर दिल्ली ंगा।"

रिहर्सल-रूम खाली पड़ा था। सुनसान। एक स्त्री। एक पुरुष। दोनों उस शून्य के नीचे बैठे थे।

स्त्री ने कुछ कहा। फिर पुरुष ने कुछ कहा। यह कहना और सुनना चलता रहा। रिकार्ड बज रहा था कि सुई अटक गयी। पुरुष खड़ा हो गया। स्त्री उससे लिपट गयी। तड़ाक ! पुरुष ने रिकार्ड तोड़ दिया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। सुई छिटक गयी। 'ओह, राघव !' जमुना झिंगवाली ने दांत पीसे।

ऊपर झूलता हुआ शून्य ठहरकर हंस पड़ा। □

# भुजंग

दरवाजे पर वह एक क्षण के लिए ठिठक गया। उसके मन में कुछ भी तय नहीं था और हवा बहुत जोर से चल रही थी, जिससे उसके भीतर का सब कुछ अस्थिर हो उठा था। जल्दी-जल्दी में उसने तय किया कि वह सिर्फ इस हवा से बचना चाहता है। हवा, जिसपर किसी का बस नहीं है। यह सोचकर उसने राहत महसूस की और एक किवाड़ को जरा-सा खिसकाकर अन्दर घुस गया। किवाड़ ने फर्श से लगकर हल्की-सी आवाज पैदा की, पर उसने लापरवाही से उसे पीछे छोड़ दिया। चार-पांच कदम चलकर वह फिर रुक गया और इधर-उधर देखने लगा। घर बहुत बड़ा था और उसमें लंबे दालान के बाहर पुरानी कारीगरी वाले खूबसूरत खंभे थे। पहली नजर में उसे भय लगा किंतु तुरंत ही उसने स्वयं को एक उम्दा आश्वासन से भर लिया। वह अक्सर ऐसा करता है और अन्त में किसी-न-किसी ठिकाने से लग जाता है। तभी उसे लगा कि उसके अलावा भी यहां 'कोई' है—कोई, जिसे अभी सही-सही नाम नहीं दिया जा सकता, पर पहचाना जा सकता है। वह धीमे से हंसा, वैसे हंसने का कारण उसके सामने भी स्पष्ट नहीं था। इस उधेड़बुन के बीच उसने दुबारा उस पराये घर का मुआयना किया। फरवरी के आखिरी दिनों की मनहूसियत सब जगह थी। मैली चद्दर की तरह धूप जिस कोने में यों ही पड़ी हुई थी, वहां तीन औरतें अपने-अपने ढंग से व्यस्त थीं।

वह खुश हुआ, कि उसका आश्वासन एकदम गलत नहीं था। नये सिरे से उसने खुद को तैयार किया, यह जानते हुए भी कि घरेलू किस्म की औरतों के समक्ष इस किस्म की तैयारी वेमानी होती है।

काफी सधे हुए अंदाज में वह उनके पास जाकर खड़ा हो गया और वोला, "मैं एक शरीफ आदमी हूं। चोर उचक्का नहीं। आप लोगों को मुझसे डरने की कतई जरूरत नहीं है।" औरतों के चेहरे वतला रहे थे कि वे उससे डरी नहीं हैं और उन्होंने उसे गंभीरता से नहीं लिया है।

वह अपने आपको अपमानित-सा महसूस करने लगा। एक छोटी-सी चाह जगी कि अभी कोई चमत्कार यहां घट जाए, चमत्कार नहीं तो कोई घटना ही खड़ी हो जाए जिससे वह अपना महत्त्व सावित कर सके। 'महत्त्व' शव्द को जव वह वार-वार मन में दुहरा रहा था, पहली औरत ने साड़ी के पल्लू को सिर पर से खींचकर कंधे पर डाल लिया और गर्दन मोड़कर चोटी खोलने लगी। दूसरी ने पाटी को आगे वढ़ाया और उसके पीछे उकड़ूं वैठ गयी।

उसने भांप लिया, कि वह इंतजार कर रही है। ऐसे इंतजार को जो संक्षिप्त होता है, पर जिसमें कोई क्रूर भाव शामिल रहता है, वह जल्दी ही पकड़ लेता है। क्रूरता के उस खिंचाव में शायद उसे भी थोड़ा संतोष मिलता है।

पहली ने चोटी खोलकर नकली वाल निकाले और उन्हें अपने पास रख लिया। फिर रिवन को दांतों से पकड़कर खींचा और एक तरफ फेंक दिया। अव असली वाल ही सिर पर रह गये। उसने कंघी डालकर उन्हें सुलझाया। वे रवर के संपोलियों की तरह हिलने लगे।

दोनों हाथों की अंगुलियां गूंथ कर दूसरी ने कट-कट की कई आवाजें कीं। उन आवाजों के मिले-जुले संगीत को वह वेवकूफ की तरह सुनता रहा। तव दूसरी ने कसकर जमुहाई ली। उसकी आंखों में ढेर-सा पानी भर आया तो वह वेदिली से हथेलियां रगड़कर उसे पोंछने लगी।

ऊव से वचने के लिए वह खाली-खाली मुस्कराया। उसे मुस्कराते देख कर दूसरी कुछ अजीव ढंग से मुस्करायी और पहली के वालों पर

झुक गयी। अगले कई क्षणों मे वह बड़ी उत्साहित रही और किसी चतुर खिलाड़ी की भांति पहली के सिर को झकझोरने लगी। बालों मे तेजी मे अंगुलियां डालकर वह कुछ चुनती और उसी रफ्तार से नाखूनो को बजा देती। चिट-चिट-चिट। उसके नाखून लाल हो गए और उनपर खून चमकने लगा। पर वह जुटी हुई थी, बेध्यान।

वह वहा से हटने की सोचने लगा। इस खेल मे धीरे-धीरे उसकी दिलचस्पी कम होती जा रही थी। अचानक तीसरी ने मुह ऊपर उठाया और तड़ाक से छींक दिया। वह चौंककर उसे घूरने लगा। तीसरी की भौंहे, पलकें और नथुनो की गोलाइयां धूल से अंटी हुई थी। वह छलनी भर-भर कर गेहूं साफ कर रही थी। वह ठठाकर हंसा पड़ा। हंसते-हंसते उसे अपनी हसी चुभने लगी तो चुप हो गया। तीसरी ने धुंधलायी नजर मे उसकी तरफ देखा और जान गयी कि वह उसकी शक्ल पर हंस रहा है। पता नही वह होंठों मे क्या बडबडायी, पर बडबड़ाते हुए ही उसने एक छींक और ले ली और ब्लाउज की बाह से नाक पोंछने लगी।

"कितनी हो गयी!"

घुटनो से गर्दन सटाये हुए पहली ने पूछा। उसकी आवाज जैसे किसी कुए मे चक्कर लगाती हुई ऊपर आयी।

"पांच कम चालीस।"

दूसरी ने नाखून चिटकाये और उनपर लगी हुई लाली पहली को दिखलायी।

"गिनती ठीक कर रही हो?"

"हां, मैं भूलती नहीं।"

दूसरी ने किंचित कठोरता से जवाब दिया। उसकी आंखों मे शिकार की 'खोज' चस रही थी और चेहरा तमतमा गया था।

वह अंदर घबराहट महसूस करने लगा। 'हत्या,' दूसरी के तमतमाये हुए चेहरे को देखकर उसके मस्तिष्क मे इस लफ्ज की गूंज भर गयी। बायें पैर का वजन दायें पर डालकर उसने बेकली से चारों निगाह दौड़ायी। बगल मे ही एक कमरा था और उसके

पर हरे परदे लगे हुए थे। सबकी आंख बचा कर वह भीतर हो गया। गुमनाम-सा अंधेरा था, और सीलन थी। उसकी घबराहट मिटने लगी। स्वयं को मजबूत करने और जमाने के लिए वह दीवारों पर मक्खियों के दाग तलाशने लगा। बहुत-से थे, विचित्र आकारों में। सब मिलकर एक तीखा और नंगा प्रभाव दे रहे थे।

परदा खींचकर तीसरी दाखिल हुई। बोली, "यह कमरा मेरे पति का है यानी हम सब का।" वह गुमसुम खड़ा रहा। दरअसल, उसके पास कहने के लिए कोई 'बात' नहीं थी।

"हम तीनों का एक ही पति है।"

उसकी इच्छा हुई कि पूछे, तुम्हारे पेटीकोट का क्या रंग है यानी तीनों के पेटीकोट एक ही रंग के हैं क्या ? वह इन दिनों रंगों के माध्यम से मानसिकता का अध्ययन कर रहा था। हकीकत यह थी कि छंटनी में निकाल दिये जाने के बाद उसके पास कोई खास काम नहीं रह गया था और वह इस फालतू वक्त को ज्यादा-से-ज्यादा कीमती बनाने में लगा हुआ था। 'कीमती' उसने मन में कहा। उसे उन दो-चार गहनों की याद हो आयी जो अब उसकी पत्नी के शरीर पर नहीं थे।

"दूसरी क्या कर रही है ?"

उसने इस तरह पूछा जैसे मकान की तलाशी लेने आया हो ?

जूंएं...वह पहली की जूंएं मार रही है।"

"तुमने जूंएं देखी हैं ?"

उसकी इच्छा हुई कि पूछे, तुम्हारे भी जूंएं हैं क्या, यानी तीनों के पास कुल कितनी जूंएं हैं ?

तीसरी ने उसके सवाल को भांप लिया, लेकिन आधा ही। नजदीक आकर बोली, "नहीं मेरे जूंएं नहीं हैं।"

वह खुश हो गया और उसकी भौंहों, पलकों और नथुनों की गोलाइयों पर जमी हुई गर्द को देखने लगा। रेतीली औरत का स्वाद कैसा होता है? जीभ पर उतरी हुई लार को घूंटते हुए उसने स्वयं से प्रश्न किया।

"तुम्हारे कितनी बीवियां हैं !"

वह अचकचा गया, फिर बोला, "एक।"

तीसरी हस पड़ी। उसकी आंखों में संदेह था, "तुम झूठ बोल रहे हो।"

इस आरोप का वह कोई जवाब नही दे पाया।

कमरे मे एक और पलंग के नीचे खरखराहट हुई तो वह चौंका।

तीसरी ने झुककर पलंग के नीचे देखा और बोली, "वे जाग गये हैं। खूब डटकर भाग पीते हैं और फिर तीन-चार घटे की लंबी तानते हैं, पलग के नीचे इसलिए सोते हैं कि हम मे से कोई तंग न करे। हम तीन हैं न! वैसे मैं इन्हें बहुत कम तग करती हूं।"

"तू स्साली मुझे सबसे ज्यादा तग करती है।"

एक काला भुजंग आदमी पलग के नीचे से निकला और जोर से चीखा।

वह आश्चर्य से उस काले भुजगराम को देखने लगा। इस बीच पहली और दूसरी ने प्रवेश किया और वे उस काले की बगल मे जाकर खड़ी हो गयी। डाट खाकर तीसरी झूठ-मूठ झेंप रही थी।

काले ने तहमद कसा, मूछों पर हाथ फेरा और फिर उसकी तरफ देखकर चिल्लाया, "तुम कौन हो? यहा क्यों आये हो?"

एक साथ दो सवाल सुनकर वह हडबड़ा उठा और अपना नाम-परिचय भूल गया। दया की भीख-सी मागते हुए उसने तीसरी की तरफ देखा। वह स्त्रियोचित अभिमान से काले की तनी हुई देह को 'निहार' रही थी। भयाकुल होकर उसने अपने आपसे ही पूछा, 'तुम कौन हो, यहा क्यों आये हो?' पर इस बार भी उसने स्वय को निरुत्तर पाया, निरुत्तर और लाचार!

"तुम बोलते क्यों नही? गूगे हो?"

भुजंगराम ने चीख कर कहा और गुस्से से मुट्ठियां बांधकर उस पर झपटा।

वह पावों को सिर पर रखकर उछला, फिर—बदहवास भागने लगा, भागता गया। पीछे उसे तेज खिलखिलाहट सुनाई दी। वह और जोर से दौड़ा।

एक पार्क मे आकर वह रुका, मुडकर देखा भुजंग नही था। तीन

पर हरे परदे लगे हुए थे। सबकी आंख बचा कर वह भीतर हो गया। गुमनाम-सा अंधेरा था, और सीलन थी। उसकी घबराहट मिटने लगी। स्वयं को मजबूत करने और जमाने के लिए वह दीवारों पर मक्खियों के दाग तलाशने लगा। बहुत-से थे, विचित्र आकारों में। सब मिलकर एक तीखा और नंगा प्रभाव दे रहे थे।

परदा खींचकर तीसरी दाखिल हुई। बोली, "यह कमरा मेरे पति का है यानी हम सब का।" वह गुमसुम खड़ा रहा। दरअसल, उसके पास कहने के लिए कोई 'बात' नहीं थी।

"हम तीनों का एक ही पति है।"

उसकी इच्छा हुई कि पूछे, तुम्हारे पेटीकोट का क्या रंग है यानी तीनों के पेटीकोट एक ही रंग के हैं क्या? वह इन दिनों रंगों के माध्यम से मानसिकता का अध्ययन कर रहा था। हकीकत यह थी कि छंटनी में निकाल दिये जाने के बाद उसके पास कोई खास काम नहीं रह गया था और वह इस फालतू वक्त को ज्यादा-से-ज्यादा कीमती बनाने में लगा हुआ था। 'कीमती' उसने मन में कहा। उसे उन दो-चार गहनों की याद हो आयी जो अब उसकी पत्नी के शरीर पर नहीं थे।

"दूसरी क्या कर रही है?"

उसने इस तरह पूछा जैसे मकान की तलाशी लेने आया हो?

जूंएं···वह पहली की जूंएं मार रही है।"

"तुमने जूंएं देखी हैं?"

उसकी इच्छा हुई कि पूछे, तुम्हारे भी जूंएं हैं क्या, यानी तीनों के पास कुल कितनी जूंएं हैं?

तीसरी ने उसके सवाल को भांप लिया, लेकिन आधा ही। नजदीक आकर बोली, "नहीं मेरे जूंएं नहीं हैं।"

वह खुश हो गया और उसकी भौंहों, पलकों और नथुनों की गोलाइयों पर जमी हुई गर्द को देखने लगा। रेतीली औरत का स्वाद कैसा होता है? जीभ पर उतरी हुई लार को घूंटते हुए उसने स्वयं से प्रश्न किया।

"तुम्हारे कितनी बीवियां हैं!"

वह अचकचा गया, फिर बोला, "एक।"

तीसरी हंस पड़ी। उसकी आंखों में संदेह था, "तुम झूठ बोल रहे हो।"

इस आरोप का वह कोई जवाब नहीं दे पाया।

कमरे में एक और पलंग के नीचे खरखराहट हुई तो वह चौंका।

तीसरी ने झुककर पलंग के नीचे देखा और बोली, "वे जाग गये हैं। खूब डटकर भांग पीते हैं और फिर तीन-चार घंटे की लंबी तानते हैं, पलंग के नीचे इसलिए सोते हैं कि हम में से कोई तंग न करे। हम तीन हैं न! वैसे मैं इन्हें बहुत कम तंग करती हूं।"

"तू स्साली मुझे सबसे ज्यादा तंग करती है।"

एक काला भुजंग आदमी पलंग के नीचे से निकला और जोर से चीखा।

वह आश्चर्य से उस काले भुजंगराम को देखने लगा। इस बीच पहली और दूसरी ने प्रवेश किया और वे उस काले की बगल में जाकर खड़ी हो गयीं। डांट खाकर तीसरी झूठ-मूठ झेंप रही थी।

काले ने तहमद कसा, मूछों पर हाथ फेरा और फिर उसकी तरफ देखकर चिल्लाया, "तुम कौन हो? यहां क्यों आये हो?"

एक साथ दो सवाल सुनकर वह हड़बड़ा उठा और अपना नाम-परिचय भूल गया। दया की भीख-सी मांगते हुए उसने तीसरी की तरफ देखा। वह स्त्रियोचित अभिमान से काले की तनी हुई देह को 'निहार' रही थी। भयाकुल होकर उसने अपने आपसे ही पूछा, 'तुम कौन हो, यहां क्यों आये हो?' पर इस बार भी उसने स्वयं को निरुत्तर पाया, निरुत्तर और लाचार!

"तुम बोलते क्यों नहीं? गूंगे हो?"

भुजंगराम ने चीख कर कहा और गुस्से से मुट्ठियां बांधकर उस पर झपटा।

वह पांवों को सिर पर रखकर उछला, फिर—बदहवास भागने लगा, भागता गया। पीछे उसे तेज खिलखिलाहट सुनाई दी। वह और जोर से दौड़ा।

एक पार्क में आकर वह रुका, मुड़कर देखा भुजंग नहीं था। तीन-

चार लम्बी-लम्बी सांसें छोड़ीं और धड़ाम से गिर पड़ा। उसकी थरथराती पिंडलियां सूखी दूब में पसर गयीं। काफी थकान महसूस हो रही थी। उसे नींद आने लगी। नहीं, सोना नहीं है। उसने जबरन अपने को मजबूत किया। आंखें फाड़-फाड़कर धूप और पेड़ों को देखा। आज मैंने कुछ नहीं किया, मैं कुछ नहीं कर सकता, कभी भी। सोच-सोचकर उसका दिल डूबने लगा। प्यास लग आयी। उठा, नल के पास जाकर पानी पिया। फिर मुंह पर कुछ छींटें मारे। अच्छा लगा। वह फेफड़ों में नया उल्लास भरने लगा। तभी उसने किसी को सुना। एक आवाज, महीन-सी। मेरे कान बहुत तेज हैं, मैं चीजों को देखने से पहले सुनता हूं। वह हंसा, काफी देर बाद। नजर 'आवाज' को खोजने लगी। किनारे की क्यारियों में कुछ पौधे हरे थे और उनपर पीले फूल खिल रहे थे। वहां उसने एक बच्ची को ढूंढ लिया।

हवा अब बंद-सी थी, न होने के बराबर। हवा, जिससे वह डरता है, बचना चाहता है।

बच्ची के कटे हुए बाल माथे पर झालरों की तरह झूल रहे थे।

वह चलकर उसके निकट गया। मुस्कराया। बच्ची ने बेगानेपन से उसकी मुस्कराहट को लौटा दिया।

वह थोड़ा हतप्रभ हुआ, पर तुरंत अतिरिक्त लाड़ से बोला, "यहां क्या कर रही हो, बंटी ?"

बंटी उसके दोस्त की प्यारी-सी लड़की का नाम है। एन मौके पर याद आ गया और वह संबोधन की उलझन से उबर गया। उसे सचमुच प्रसन्नता की कंपकंपी छूटने लगी। वह उसपर काबू पाने की चेष्टा करने लगा। मैं इतनी जल्दी कांपने लगता हूं ?···मैंने आज कुछ नहीं खाया—मैं आज कुछ नहीं खा सकता। उदासी उगने लगी। उसने उसे कठोरता से मसल दिया।

बच्ची पीठ फेरकर खड़ी हो गई, किसी समझदार लड़की की तरह।

वह ढीठता से हकलाते हुए बोला, "क्या-क्या···तुम्हारा नाम बंटी नहीं है ?"

"नही !" बच्ची ने रुखाई से कहा।

"तो ?" वह कोमलता का दबाव महसूस कर रहा था। आवाज कितनी कोमल है।

"मैं पुन्नी हूं, पुन्नी। लेकिन···"

"लेकिन क्या ?"

वह रस लेने लगा। बच्ची के बोलने का ढंग आकर्षक था। सभी बच्चे ऐसे नही बोल सकते, उसने निर्णय दिया।

"स्कूल मे मेरा नाम संगीता है। संगीता जोशी।"

बच्ची ने उसकी तरफ चेहरा घुमाकर गर्व से कहा। उसकी बड़ी-बड़ी पलकों वाली आखों मे खास किस्म की तरलता थी। तरलता और चमक।

"तो पुन्नी···संगीता, तुम यहा क्या कर रही हो ?"

वह खुद अपने गले की मिठास पर मुग्ध हो गया।

"कुछ नही अंकल, ये···ये देखिये।"

बच्ची ने भोलेपन से अपनी मुट्ठियां खोल दी।

(बड़े होने पर यह भोलापन मर क्यों जाता है ? उसने दुखी भाव से सोचा) गुलाब की मुड़ी हुई पखुडियां जमीन पर गिर गयीं।

"तुम फूल लेने आयी हो ?"

"हां।" बच्ची ने सिर हिलाया।

"तुम्हे गुलाब अच्छे लगते हैं न !" कहकर उसने पौधो की तरफ देखा। गुलाब कही-कही थे ! सूरजमुखी का बड़ा-सा फूल तोड़कर उसने बच्ची की ओर बढ़ा दिया।

वह खुलकर खिलखिलायी, "यह गुलाब नही है।"

पर उसने फूल ले लिया। फ्राक को आगे से मोड़कर झोली बनायी और उसमें डाल दिया।

दोनों कुछ देर फूलों की तलाश में व्यस्त रहे, फिर एक बेंच पर बैठ गये।

बच्ची की आखें हर दृश्य पर से नाचती हुई-सी गुजर रही थी।

वह उसके प्रति प्रशंसा से भर उठा। बच्ची अभी भोली है और बड़ी

हो रही है। इसे अब पुन्नी नहीं कहा जा सकता (वह पांवों को देख रहा था) यह संगीता बनती जा लगा।

"आप हंस क्यों रहे हैं अंकल ?"

संगीता ने तुनक कर पूछा। 'तुनकने' से उसकी पर झुक आयी थी।

"तुम बहुत सुंदर हो।"

आप इसी बात पर हंस रहे हैं ?···पर सुंदर तो कहते हैं।"

संगीता शरमाने लगी।

वह उसे शरमाते हुए देखने लगा, विस्मय से।

"पुन्नी !"

किसी ने पार्क के दूसरे छोर से पुकारा। सब हुई-सी पुकार। आवाज उसे 'जानी हुई' लगी।

"आयी पापा !"

कह कर पुन्नी दौड़ी और वहां चली गयी ह थी। उसने देखा, तीन औरतों के साथ वही काला और पुन्नी जाते ही उसके पैरों से लिपट गयी थी।

सन-सन-सन। उसके शरीर में एकदम फिर भागा। इस दफा उससे छलांग मारकर पार्क को लांघा और सड़क पर भागता चला गया। को भीड़ में पाया। नारे लगाती हुई भीड़ में।

"तुम देर से क्यों आये हो ?"

एक व्यक्ति ने उसके कंधे पकड़ लिए और रोब खड़ा रहा। उसके पेट में भूख चल रही थी।

"तुम हमारा साथ देने में कतराते हो। कहा।

उसने स्वीकार किया कि वह उनका साथ देने

तभी कई गोले छूटे। धुआं-धुआं। एक व्यक्ति

# सुरंग

सीढ़ियां उतरते-उतरते शी० की सांस फूलने लगी। एक हाथ से ाड़ी की पटलियां संभाले और दूसरे से कछुए के आकार का सुनहला र्स थामे, वह एक-एक कदम रखती हुई नीचे के लान तक आई। उसके हरे पर थकान स्पष्ट थी। नथुने कांप रहे थे और ऊपर के होंठ पर सीने की छोटी-छोटी बूंदों की एक झालर चमकने लगी थी। सैर- के दिन शी० को साड़ी पहनना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। वह घर से पहले तो वह सलवार-कमीज में ही बाहर निकली थी किन जु० को पता नहीं क्यों इस वेशभूषा से कुछ चिढ़-सी है। वह अपने होस्टल के सामने ही खड़ा होकर उससे झगड़ने लगा। जब तक शी० घर लौटकर कपड़े बदल आने के लिए राजी न हुई, जू० के माथे पर सलवट पड़ी रही। फिर वह तनिक मुलायम स्वर में बोला, "मुझे लड़कियां पसंद नहीं आतीं। साड़ी में तुम स्त्री लगती हो।"

सुनकर शी० खुश हुई थी। उसने एक साथ अपने भीतर तरलता और सम्पूर्णता के भाव को तीव्रता से महसूस किया था। जु० का कभी-कभी इस तरह कोमल और गम्भीर होकर बोलना उसे मुग्ध कर देता था।

वह अगस्त की एक शाम थी और आकाश घिरा हुआ था। जु० ने पीछे मुड़कर देखा। बादल का एक टुकड़ा महल के गुम्बज पर टंगा हुआ था। दोनों तरफ को भूरी पहाड़ियों के बीच उसकी कबूतरी उठान मुकुट की भांति सज रही थी।

"मौसम कितना चढ़ गया है।" रूमाल से गर्दन को थपथपाते हुए शी० ने कहा। उसका कांपना अब कम हो गया था और वह यह भी कहना चाहती थी कि हवा एकदम बंद है।

"शायद रात को बारिश हो।"—जु० ने हथेलियां फैलाकर कंधे उचकाए। वह लान पर धीरे-धीरे चल रहा था और उसके पांव एक निश्चित गति में उठ रहे थे।

"ऐसे वक्त भगवान के प्रति मेरा हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। उसने हमें कितना कुछ दिया है।" शी० ने जु० का अनुसरण करते हुए गहरी सांस ली। उसकी आवाज में नाजुक-सा कंपन था और वह भावुकता और प्रशंसा-भरी दृष्टि से सामने के पेड़ों को देख रही थी।

एकाएक जु०चौंक गया। उसे लगा जैसे शी०ने उसके कुरते की कालर खींचकर एक गिलगिलाता हुआ कीड़ा भीतर डाल दिया है, जो उसकी पीठ पर नीचे की तरफ रेंग रहा है। वह अव्यवस्थित हो उठा। हे भगवान दया के सागर! न जाने कब इन भगवानजी से शी० को छुटकारा मिलेगा। शायद कभी नहीं। ईश्वर को वह काफी सीरियसली लेती है। जु० अनायास ही बचपन में पहुंच गया। एक घटना उसकी स्मृति में झनझना उठी।··· मां रोज दो-ढाई घंटे पूजा करती थी और वह पास की मूढ़ी पर बैठ बार-बार हिलते हुए उसके सिर को घूरता रहता था। उसे आश्चर्य भी होता था और कुढ़न भी। एक दिन उसने मां के ईश्वर की प्रतिमा को चुपके से चुराया और घर के पिछवाड़े के कूड़े-करकट में फेंक दिया। प्रतिमा टूट गयी। उसे एक अजीब-सी प्रसन्नता हुई। उसने महसूस किया कि अब सब कुछ ठीक हो जायेगा और उसके और मां के बीच में ईश्वर नहीं आ सकेगा। मां सदा के लिए एक भयंकर यंत्रणा से मुक्त हो गयी है। किंतु चार-पांच रोज बाद, पता चलने पर, मां ने उसकी जमकर पिटाई की थी और ईश्वर फिर प्रतिष्ठित हो गया था।

"उसमें से चलोगे न?"

जु० का ध्यान टूटा। शी० उसके कंधे पर सिर टिकाये एक ओर इशारा कर रही थी।

उसने वेमन से उधर देखा। वह एक लम्बी सुरंग थी और छुट्टी के दिन 'महल' देखने के लिए आये हुए लोग अक्सर उसमें से होकर शहर की तरफ निकल जाते थे।

'विचार बुरा नहीं है।' सिगरेट जलाकर व्यस्त ढंग से उसे होंठों में दवाते हुए जु० ने सोचा। पर उसे मालूम था कि शी० डरपोक बहुत है। किसारियों और चींटियों के खयाल तक से उसके रोम-रोम में झुरझुरी छूटती है। बोला, "सुरंग में कहीं-कहीं बिच्छू और सांप हैं।"

उस क्षण के लिए शी० सहम गयी। किंतु दूसरे ही क्षण उसने भांप लिया कि जु० उसे तंग कर रहा है। तब जिद्दी ढंग से मुंह बिचका-कर वह आगे बढ़कर चलने लगी और सुरंग के द्वार पर पहुंचकर एक गर्व-भरी मुद्रा में खड़ी हो गयी।

एक निर्धारित सीमा से जुड़े हुए, बंद और अकेले अंधकार में उष्णता होती है। सुरंग में प्रवेश करते ही जु० के मस्तिष्क में यह विचार कौंध गया। फिर उसने अपने चारों ओर एक परिचित रहस्य की उपस्थिति को महसूस किया और उत्तेजित होकर शी० को बांहों में दबोच दिया।

शी० इस आक्रमण के लिए तैयार नहीं थी। वह कुछ तिलमिलाई, उसे गर्मी लग रही थी, फिर शांत हो गयी। एक दूसरे की सांसें महसूस करते हुए वे कुछ पल खड़े रहे। रोशनी से एकदम अंधेरे में आने के कारण शी० की आंखें अंधी हो रही थीं।

"तुम्हें दिखलाई देता है?" शी० ने जु० से बंधे-बंधे ही स्थिरता के लहजे में पूछा।

अचानक जु० की देह का जादुई ज्वार उतर गया। उसने बांहें खींच लीं और ढीले हो कर महसूस किया कि उसके आसपास का प्रभाव वैसा नहीं है जैसा कि वह चाहता है। उसे अपने इस व्यवहार पर अफसोस हुआ।

"तुमने मेरी साड़ी जला डाली है।" शी० ने नाक से बोलते हुए रोष जाहिर किया। वह साड़ी के पल्ले को रूमाल से मसल रही थी। जु० को अपनी सिगरेट का खयाल आया। आखिरी कश लेकर उसने टोटे को जूतों तले दबा दिया। फिर शी० की ओर झुककर उसने दियासलाई जलाई। साड़ी में दस पैसे जितना बड़ा काला छेद हो गया

था। जु० की समझ मे नहीं आया कि वह स्थिति का सामना कैसे करे और क्या कहे ? वह जानता था कि यह साड़ी शी० की अपनी नही है, उसकी भाभी या किसी सहेली की है। उसके पास दो ही साड़ियां हैं— एक सूती, हैंडलूम की और दूसरी तितलियों वाली, नाइलौन की। और जु० ने शी० को कभी कुछ खरीदकर नही दिया जब कि शी० के लिये हुए कई 'उपहार' उसके पास हैं।

एक असह्य मौन दोनो के बीच कुछ देर तक घिरा रहा। वे अपनी पदचाप सुनते हुए साथ-साथ चलते रहे।

"नाराज हो गये क्या ?" सहसा शी० ने जु० का हाथ पकड़कर पूछा। उसने जु० की घवराहट का अदाज लगा लिया था।

"नही तो।" कहते हुए जु० को लगा जैसे शी० ने उसे डूबते-डूबते सहारा देकर बचा लिया है। सकट से उबरकर वह नार्मल हो गया।

अब वे सुरग के मध्य भाग मे चल रहे थे। अधेरा गाढा था, पर उन्हें एक-दूसरे के अस्तित्व का स्पष्ट आभास हो रहा था। अचानक जु० को लगा कि शी० रो रही है। उसे दबी-दबी सिसकियां सुनाई दी।

"क्या बात है ?" उसने अनुमान से शी० की चोटी पकड़नी चाही। वह शरारत मे मुस्करा रहा था, लेकिन शी० के लिए उसकी मुस्कराहट का कोई अर्थ नही था। वह बहुत कम देख पा रही थी और लड़खड़ाती हुई चल रही थी।

"कोई हमारा पीछा कर रहा है।" शी० ने सुबकते हुए कहा।

"तुम डर रही हो।" मजा लेने के लिए जु० ने जोरदार ठहाका लगाया।

"मत मानो मेरी बात। मैं सच कह रही हू।" शी० ने तुनककर फुस-फुसाते हुए उत्तर दिया। उसके सारे शरीर मे सनसनाहट-सी हो रही थी।

जु० ने कान लगाया, तो उसे भी लगा कि उन दोनो के अतिरिक्त कोई तीसरा वहा मौजूद है।

"अच्छा, तुम तेज चलो।" वह धीरे स्वर मे बोला।

शी० तेजी से आगे बढने लगी। जु० भी लबे-लबे डग भरने लगा। उसके दिल की धड़कन तीव्र हो गयी थी और वह झुंझलाता हुआ उस

पर काबू पाने की चेष्टा कर रहा था। क्या मुझे उस 'तीसरे' से भय लग रहा है। उसने स्वयं से प्रश्न किया और उसी प्रकार चलता रहा।

शहर की ओर खुलने वाला सुरंग-द्वार निकट आने पर हल्का-सा उजाला हुआ। जु० ने आश्चर्य से आंखें फाड़-फाड़कर अपने इर्द-गिर्द देखा। शी० उसके साथ नहीं थी। वह सुरंग के दरवाजे से पीठ सटाकर खड़ा हो गया और पीछे की तरफ देखने लगा। अंधेरा-ही-अंधेरा था और उसमें शी० के होने का कोई चिह्न नजर नहीं आ रहा था।

कुछ देर बाद उसे चप्पलों की आवाज सुनाई पड़ने लगी। फिर शी० की धुंधली-सी आकृति उभरी। एक-एक कदम रखती हुई वह उसके नजदीक पहुंची। उसे दरवाजे पर खड़ा देख कर वह चिल्लाई, "तुम यहां हो ?"

उसकी आवाज आतंक की जड़ता से घुटी हुई थी।

"हां-आ" जु० ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, "मैं करीब पांच मिनट से यहां तुम्हारा इंतजार कर रहा हूं।"

शी० के चेहरे पर यकायक कालिख पुत गई। आंखें सिकुड़ कर गड्ढों में जा धंसी। वह लगभग चीखती हुई बोली, "तुम यहीं खड़े थे ? ...तो अभी मेरे साथ कौन था ? मेरा हाथ किसने पकड़ रखा था ?" —उसने जु० को बुरी तरह झिंझोड़ दिया, "बताओ, कौन था मेरे साथ ? बताओ...बताओ ना ?..."

जु० निरंतर उसके पागलपन को देखता रहा। शी० उसके वक्ष से लग कर हिचक-हिचक कर रो पड़ी। वह उसकी कमर के खुले हिस्से को आहिस्ता-आहिस्ता सहलाता रहा। तभी उसकी दृष्टि ने जाना कि शी० के शरीर का रंग बदल रहा है। एक क्षण के लिए त्वचा बिल्कुल नीली पड़ गयी, फिर लाल, फिर हरी, फिर स्याह। जु० इन रंगों से परिचित नहीं था। उसकी इच्छा हुई कि वह शी० से उनके बारे में कुछ पूछे, फिर वह टाल गया और शी० का रुदन समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगा। □

# उत्तरार्ध

वह कभी भी आ सकता है। रात होते ही मी० को लगने लगता है, उसका आना ठीक नही है। खुली आखो मे अधेरे की तीखी सलाइया चुभने लगती है और वह सास रोककर उन समस्त ध्वनियों को पकड़ने की कोशिश करती है जो उसके आने की पूर्व-स्थितियों से जुडी हुई हैं। वक्ष की गोलाइयों के बीच एकाएक कई मछलिया फिसल-फिसल जाती हैं। पसीने की चिपचिपी बू से भरे हुए दो हाथ मी० को अपनी गुजलक मे दबोच लेते हैं और धीरे-धीरे वह ठडी होने लगती है। एक अदेखे समुद्र के विस्तार मे सब कुछ गुम हो जाता है।···कितने ही अनिश्चित भविष्य हैं जिनके बारे मे हम सदा निश्चित ढग से सोचते हैं और दुखी हो उठते हैं। एक सडे हुए केले को मुह मे दबाकर आकाश की ओर एकटक ताकते रहना और खुश होना। हर ''खुशी जगल के उस सूखे सिरे पर जाकर दुर्गन्धाने लगती है, जहा मुर्दा जानवरों का मास है, हड्डियों के स्तूप हैं, कौए है।···मी० हर मौसम मे स्वय को जीवित और सुरक्षित रखने के ढंग सोचती रहती है।···तेज हवा मे धूल से बचाव मुश्किल है।

बाहर बरामदे मे वे दोनो मूढ़े डाल कर बैठे हैं। चुपचाप।

गत्तो की तरह ठोस बादल, बिखरे हुए। आसमान का रग मैला हो गया है। धूप मे पानी का-सा अहसास है।

शायद उन्हें बारिश का इतजार है। कभी-कभी लोग इसी तरह

अपने को व्यस्त रख पाते हैं। यह व्यस्तता किसी भी दशा में नहीं खुलती, वंद गोभी की तरह लुढ़कती रहती है। चारों तरफ से कटा हुआ एक रिक्त-तिक्त क्षण होता है, जो मन पर पारे की वूंद वनकर उभरता है और कंपकंपाता रहता है, निरंतर।

तुम कुछ वोल नहीं रहे हो ?

मी० शिकायत के लहजे में शुरूआत करती है। उसे हर चीज अखरने लगती है, अपनी उपस्थिति भी।

हां, मैं काफी देर से एक ही वात सोच रहा हूं।

प्र० के गले में खरखराहट भर गयी है। शब्दों के ढेले एक साथ उछले हैं और आस-पास सब जगह फूटकर फैल गये हैं। खंखारकर झेंपता हुआ वह मी० की तरफ देखता है।

क्या ?"

मी० पूछ लेता है। यों ही तव उसे लगता है कि वह रुचिहीन होती जा रही है। उसकी आंखें खास ढंग से गोल हो जाती हैं और उनके नजदीक चार-पांच रेखाएं सिकुड़कर थम जाती हैं।

यही कि दो महीने पहले हमारी शादी हुई थी।

प्र० के चेहरे पर हल्का-सा हास्य चिलकता है, परंतु उसकी व्यर्थता को महसूसकर वह आगे के कई वाक्यों को पी जाता है। फिर मुंह के आगे हथेली लगाकर एक लंवी उवासी फेंकता है। उसके पीले जवड़ों में थरथराहट होती है और कनपटियों पर कुछ ललाइयां उभरकर गायव हो जाती हैं। मी० उसकी ओर न देखते हुए देखती है। सामने के गमले पर दृष्टि टिकाये हुए वह माथे पर उतरी भूरी लटों को पीछे खोंसकर जूड़े के पिन ठीक करने लगती है। ऐसा करते हुए उसकी कुहनियां ऊपर उठ गयी हैं और विना वाहों के ब्लाउज की पट्टियों के पास वालों के छोटे-छोटे गुच्छे झांकने लगे हैं। एक मुड़ी हुई पिन को दांतों में दवा कर वह भिचे स्वर में कहती है, शादी के वाद सव खत्म हो जाता है।

प्र० के अंदर एक और उवासी ऐंठने लगती है।

आजकल तुम अपनी वगलें साफ नहीं करती हो ?

मी० खिसिया जाती है और झटके से हाथों को गोद में दवा लेती है, जैसे वे हाथ नहीं फड़फड़ाते हुए कबूतर हों।

दीवार पर चढ़े हुए मनी प्लाट की कुछ काली, निर्जीव पत्तियां वायु-वेग से गिर पड़ती हैं।

लान के उस तरफ सड़क है, आगे ऊवड़-खावड़ जमीन, और आगे अधवने मकान। इधर-उधर ईंट और चूने और वजरी के ढेर।

गर्त्ते एक दूसरे के नजदीक खिसक आये हैं और आकृतियां बदल रहे हैं। दिशाओं में राख की वर्फ गिरने लगी है।

प्र० छज्जे को घूर रहा है, किंचित् उत्साह से। उस पर बालू के मोटे, खुरदरे कण लहरदार पत्तों में विछे हुए हैं और एक छिपकली सिर धुनती हुई वैठी है।

मी० इस वक्त किसी स्थिर कोने में है।

जानवूझ कर उसने सब कुछ कठोर व्यंग्य को सौंप दिया है जो उसकी सास-सास के संग देह के हर हिस्से में धसता चला जा रहा है। प्रतीक्षा के उसी अदृश्य फंदे में वह झूलने लगी है जो रोज रात को उसके लिए अजगर वन जाता है।...वह कभी भी आ सकता है। आ जाएगा, तो क्या होगा? नहीं, उसे नहीं आना चाहिए। उसके आने पर तो मी० और भी कमजोर हो जाएगी, और भी मजबूर। वह अभी इतने नामालूम ढंग से कमजोर और विवश नहीं बनना चाहती।

छाते को छड़ी की तरह टेकता और टेढ़े-मेढ़े डग भरता हुआ एक बूढ़ा सड़क पर से गुजर गया है। उसके पीछे-पीछे कुल्फी वाले का ठेला और उसके बाद एक अधेड़ लबाडी औरत। औरत के कानों में चांदी के गोल-गोल झुमके दूर से झिलमिलाते हैं। जल्दी-जल्दी चलकर वह ठेले वाले के वरावर आ जाती है और हाथ नचाकर उससे कुछ मांगने लगती है। ठेले वाला उसे माचिस देता है। औरत लंहगे की खोसनी से बीड़ी खींचकर होंठों पर लगाती है। इतमीनान से उसे सुलगाकर वह चार-पांच तेज कश लेती है और धुआं उगलती हुई आगे वढ़ जाती है।

कल रम्मी मिली थी।

प्र० के होंठों पर एक उदार मुस्कान है। वह जाती हुई लंबाड़ी

औरत की नंगी पिंडलियां देख रहा है। उन पर नीले गुदने हैं, फूल-पत्तियां या देवी-देवताओं के चित्र।

मी० खामोश रहती है। वह जानती है, रम्मी प्र० की प्रेमिका थी। वह जीत से शादी कर रही है।

प्र० फालतूपने में मूढ़े की तीलियां खड़खड़ा रहा है।

मी० आधे क्षण के लिए चौंकती है, इस बार। फिर स्वयं को संभाल लेती है। उसका चेहरा निर्विकार बना रहता है।

प्र० जानता है, जीत मी० का प्रेमी था। वह अपने गढ़े हुए किस्से पर मन-ही-मन प्रसन्न हो उठता है। भीतर कहीं यह प्रश्न भी कौंध जाता है कि अगर अभी बोला गया झूठ सच हो जाए, तो ? प्र० 'नर्वस' होने लगता है।...ऐसा नहीं हो सकता। नहीं। तिलमिलाता हुआ कीड़ा मन जाता है और वह आत्मतुष्टि के भाव से हंस पड़ता है। अकबका कर मी० उसकी आंखों में आंखें डालकर देखती है, देखती रहती है, फिर उठकर अंदर चली जाती है।

थके हुए घोड़े की हिनहिनाहट। एक तांगा बुरी तरह हिचकोले खाता हुआ सड़क पर से जा रहा है। घोड़े के होंठों में झाग चमक रहा है।

प्र० थूकना चाहता है।

जीभ के ऊपर-नीचे काफी थूक इकट्ठा हो गया है।

इन दिनों अक्सर उसकी सब तरफ थूकने की इच्छा होती है। किंतु, एक बीयर का-सा घूंट भरकर वह टांगें सीधी कर लेता है। टांगों पर नन्हीं-नन्हीं गिलहरियां दौड़ती हुई चढ़ रही हैं, उतर रही हैं, उसे महसूस होता है। अचानक झन-झन-झन कुछ बजने लगता है। और जाने कितने समय तक वह इन नुकीली आवाजों से खेलता हुआ पुलकता रहता है।

मी० उसके कंधे पकड़कर झकझोरती है। सुनो, उसकी तबीयत...

प्र० बंद होंठों में कोई चालू-सी गाली देता है।

सुनो तो, ऐसे क्या बैठे हो...उसकी तबीयत बहुत खराब हो गयी है।

प्र० को मालूम है, नौकरानी पूरे दिनों पर है और सुबह से उसकी

हालत गिरी हुई है। वह रोमांच से घिरा हुआ मुस्करा देता है।

मी० कट जाती है। वह क्षुब्ध होकर भीतर लौट गयी है। थोड़ी देर बाद प्र० उठता है। झनझनाहट अब समाप्त है। शरीर में सुस्ती पसर गयी है। अंगड़ाई लेकर वह सोने के कमरे में घुस जाता है।

घुटी-घुटी सिसकियां उसका ध्यान आकर्षित करती हैं।

फर्श पर पड़ी हुई नौकरानी छटपटा रही है।

मी० उसे उठाकर पलंग पर सुलाने की चेष्टा कर रही है, पर वह हाथ-पैर पटकती हुई फर्श को ही पकड़े रहना चाहती है। घबराहट के मारे मी० का चेहरा पसीने से भीग गया है।

इसका क्या होगा?

मी० की जबान लड़खड़ा रही है। मुंह में गोंद-सा कुछ चिपचिपाने लगा है।

परेशानी की कोई बात नहीं है। इसके पांव फैला दो।

कहते हुए प्र० को लगता है, उसके स्वर में अतिरिक्त उछाह है। ऐसा नहीं होना चाहिए। अपनी खुशी प्रकट करने का यह उचित समय नहीं है।

वह एकदम गंभीर होकर मी० को आश्वस्त करने लगता है, मैं फोन करके डाक्टर को बुलाता हूं।

चार, दो सात, एक, तीन। हलो!

हलो! प्र० के दायें कान में एक सुरीला कंठ चहकता है।

हलो, डाक्टर पेंडसे हैं?…नहीं!

कोई नर्स लगती है। प्र० चाहता है, अभी कुछ हो जाए। कुछ भी।

बातचीत खत्म कर प्र० मुड़ा तो उसकी हथेलियां तप रही थीं। सहसा नौकरानी की लंबी चीख सुनाई पड़ती है, दर्द को काटती हुई-सी। छुरी की तरह तेज धार वाली यह चीख अगले किसी क्षण शरीर के उस नाजुक हिस्से को काट डालेगी और एक गिलगिली-सी चीज बनबिलाव या बच्चे का आकार लेकर बाहर आ गिरेगी। मी० बच्चा नहीं चाहती। नौकरानी बच्चे चाहती है, कई बच्चे। उसका पति भी

चाहता है। मी० नौकरानी की स्थिति में आने से कतराती है।···यह उसके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न है।

चीखें दीवारों, खिड़कियों और रोशनदानों पर चढ़ने लगती हैं। प्र० भाग पड़ता है, ऐसे जैसे फुटवाल के 'किक' मारकर उसी को निर्णयात्मक गोल करना हो।

दांत-पर-दांत कसे हुए वह पेट को मसल रही है। साड़ी अस्त-व्यस्त है और उसके अर्धनग्न कूल्हे एक भारी दवाव में कांप रहे हैं। आंखें कौड़ियों-सी वाहर निकल आयी हैं और लगातार आंसू वह रहे हैं।

प्र० सुखद आश्चर्य में डूवा हुआ एकटक नौकरानी को घूरता रहता है।—विस्फोट होने वाला है।

तभी मी० का खयाल आता है और वह संकुचित हो उठता है। निगाह घुमाता है, दरवाजे से कुछ हटकर मी० चित्त पड़ी है। गर्दन एक तरफ लटक गयी है। नथुने धीरे-धीरे कांप रहे हैं। ठुड्डी स्याह पड़ गयी है।

लपककर वह वेहोश मी० के निकट पहुंचता है और उसे उठाकर विस्तर पर लिटा देता है। यह स्पर्श सावुन और पाउडर और इत्र की तेज खुशवू से महकता है।···मी० रोज देर तक नहाती रहती है, फिर देर तक अपने आपको सजाती है। यह उसे अच्छा लगता है।

नौकरानी वार-वार वदन को मरोड़ रही है, अंधों की तरह हाथ-पैर पटकती हुई।

मी० की आंखें वंद हैं और वह एकदम असहाय लग रही है। प्र० को दया आने लगती है। वदला लेने की चाह ठिठक जाती है और वह टटोलती-सी नजर से मी० को झुककर देखता है। नाभि के नीचे का हिस्सा उभरा हुआ है, एक अस्पष्ट शक्ल में। वह दुष्टता से मुस्कराने लगता है। उसे वे हथियार, वे उपकरण याद आते हैं जिनका इस्तेमाल मी० उसके पुरुष से वचने के लिए करती रही है। अचानक उसे लगता है, मी० मर चुकी है—हमेशा-हमेशा के लिए। वह अव उसके सामने अपनी जीवित अवस्था में कभी खड़ी नहीं हो सकेगी। कभी नहीं।

आगे की घटना या दुर्घटना यह है कि संतुष्टि के अंतिम छोर पर

पहुंच कर प्र० सदा की भांति हार जाता है और स्वयं को थका-थका महसूस करता है। उसी हालत में वह नौकरानी के पास आकर बैठ जाता है और उसके अधेड़ शरीर की भरभराती हुई नसों को कुछ भावुकता, कुछ लापरवाही से छू-छू कर देखता है। वह उसके तन पर कसे हुए वस्त्रों को ढीला कर देता है। भय और शर्म और दु:ख के मारे नौकरानी कई भरी-भरी सांसें छोड़ती है। प्र० उसके पेट को सहलाने लगता है।

तभी डाक्टर अंदर आती है और वह चोरों की तरह सिटपिटाया हुआ-सा कमरे से बाहर निकल जाता है। एक अपरिचित गंध उसका पीछा करती है। □

# मतभेद

शाम को ताराचंद 'सहृदय' जब दफ्तर से घर लौट रहा था, उसके शरीर में गहरी थकान थी और वह बुरी तरह उदास था।

मद्रास होटल के सामने से गुजरते हुए उसने एक बार अवश्य सोचा कि अंदर जाए, कोने के किसी सोफे पर पांव फैला कर बैठे और गर्म काफी का प्याला पीकर तरो-ताजा हो जाए। पर तभी उसे कुछ खयाल आया। पतलून की जेब में उसके दायें हाथ की मुट्ठी सख्ती से कस गई। वह अपने को धक्के देता हुआ-सा आगे बढ़ गया।

बस में चढ़ते हुए वह अचानक गुस्से से कांपने लगा था, किंतु बस से उतरते हुए उसके चेहरे पर लंबा ढीलापन था और वह 'एक बेचारा गम का मारा' लग रहा था।

चौबीस सीढ़ियां थीं, वह रोज इन्हें गिनता था—मन-ही-मन। ऊपर जाते हुए। बाहर निकलते हुए। कभी-कभी तो नींद में भी यह गिनती जारी रखता था। आंख खुलने पर उसे अजीब-सा संतोष मिलता। सोचकर वह रोमांचित हो उठता कि उसका हिसाब का ज्ञान जरूरत से ज्यादा मजबूत है। फिर उसे गणित में प्राप्त उच्चतम नम्बरों का ध्यान आता जो उसके मैट्रिक के प्रमाण-पत्र में अंकित थे। उसकी खुशी बढ़ जाती और उत्साह में वह एक बार और सीढ़ियों की गिनती कर लेता।

सीढ़ियां, जिनसे वह अपनी योग्यता को तय करता था, चढ़ने

के बाद उसने घंटी बजाई। अंदर [illegible]

इला ने दरवाजा खोला। वह [illegible]
थी। उसके हाथ में चाकू और [illegible]
वह हंस रही थी।

ताराचंद 'सहृदय' को [illegible] वह जानते हुए
भी कि उसको हंसी सिर्फ [illegible] है और [illegible]
पहुंचा जा सकता।

इच्छा तो जरूर हुई ताराचंद 'सहृदय' की कि इला को जोर से
डांट दे, पर वह चुपचाप अंदर चला गया।

चारपाई पर बैठकर जूते-जुराबें उतारते हुए वह मनोरंजन के उस
अखबार के बारे में सोचने लगा जिसमें उसने कई तरह के लेख लिखे
थे। सबसे पहले उसने 'भारतीय नागरिक के मौलिक अधिकार' विषय
पर लिखा था और अपने नाम के साथ 'सहृदय' जोड़ दिया था। तब से
सब लोग उसे इसी रूप में जानने लगे हैं। [illegible] के बुलाने पर दफ्तर का
चपरासी भी उसके पास आकर कहा करता है, "ताराचंद [illegible] सा'ब,
आपको बड़े सा'ब याद कर रहे हैं।"

इला चाय लेकर आ गई। ताराचंद 'सहृदय' ने उसके हाथ से कप
ले लिया और सुड़क-सुड़ककर पीने लगा।

इला उसके सामने कुर्सी खींचकर बैठ गई और कुछ बोलने की
तैयारी करने लगी।

ताराचंद 'सहृदय' को जब यह ख्याल आया कि उसकी छोटी बहन
सामने बैठी हुई है तो वह उदास हो गया। यानी उसकी उदासी लौट
आई।

"अगले हफ्ते पापा का आपरेशन होगा। डॉक्टर ने कहा है।" इला
ने नाखून चबाते हुए कहा।

ताराचंद 'सहृदय' ने सुना और उदासी में गहरे डूब गया। उसने
पूछा, "एक्सरे रिपोर्ट आ गयी है?"

"हां।"

"तीसरी बार आपरेशन खतरे से खाली नहीं होगा।"

"हां"

"हमें इसपर सोचना चाहिए।"

"हां-आं, लेकिन डॉक्टर ने कहा है कि करवा लेना चाहिए।"

ताराचंद 'सहृदय' के पास कोई जवाब नहीं था। उसने एक लंबा घूंट लिया और चाय खतम कर दी। फिर कुछ क्षण वह होंठों से चप-चप की आवाज करता रहा।

कप लेकर इला जाने लगी तो उसने भारी गले से कहा, "ठहरो, तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

"अभी आती हूं।"

ताराचंद 'सहृदय' ने चारपाई पर पांव सिकोड़ लिए और अधलेटा हो गया।

रसोई में कुछ खास तरह की उठा-पटक करने के बाद इला वापस आ गयी। उसके चेहरे पर थोड़ी परेशानी थी।

ताराचंद 'सहृदय' दीवार को घूर-घूरकर देख रहा था। लगातार।

"मम्मी क्या कर रही हैं?" उसने खंखारते हुए पूछा। आवाज गले में भिंच गई थी।

"सो रही हैं।" इला ने अंगुलियां मसलते हुए कहा।

"इस वक्त?"

"हां, उनका मूड ठीक नहीं था। दुपहर से ही सो रही हैं। मैं अभी जगाने जाऊंगी।"

"मम्मी आज पापा से मिलने अस्पताल में गई थी?"

"नहीं।"

"तुम?"

"गई थी मैं। तभी तो कह रही हूं कि डॉक्टर ने आपरेशन के लिए सलाह दी है।" इला ने झुंझलाहट-भरे स्वर में कहा। उसे बड़ा अजीब-अजीब लग रहा था।

"अच्छा, तुम खाना जल्दी बना देना। मैं थोड़ी देर बाद पापा के पास जाऊंगा।"

इला उठने लगी।

"लेकिन अभी तुम बैठो, मुझे कुछ बातें करनी हैं।" ताराचंद 'सहृदय' ने अस्थिर ढंग से कहा।

इला चिढ़ गयी, "तो बोलो न, मुझे देर हो रही है।" ताराचंद 'सहृदय' जरा हतप्रभ हो गया। उसके माथे पर सलवटें पड़ गयीं। फिर उसने मुह को तवा-सा बनाया और होंठ काटते हुए बोला, "मम्मी जो कुछ कर रही हैं, वह ठीक नहीं है।"

"क्या मतलब ?" इला चौंकी।

ताराचंद 'सहृदय' ने एक टांग को सीधा कर पतलून की जेब से एक मुड़ा-तुड़ा कागज निकाला। आवेश से उसके नथुने फड़फड़ा रहे थे। चेहरा अचानक पसीने से भीग गया था और उसपर एक भद्दापन उतर आया था।

इला ने उसके हाथ के कागज को गौर से देखा। उसे घबराहट-सी महसूस होने लगी।

"किसका पत्र है ?" इला ने सूखी आवाज में पूछा।

"शिवनाथ का।" ताराचंद 'सहृदय' ने कागज की परतों को खोल लिया।

"शिवनाथ अंकल का ?"

"हां।" ताराचंद 'सहृदय' ने चीखकर कहा।

इला सहम गई। उसने भाई को इतने तेज गुस्से में कभी नहीं देखा था।

"क्या लिखा है ?"

"मम्मी को सीतापुर बुलाया है।"

इला चुपचाप कुछ और सुनने का इंतजार करती रही।

"इस उम्र में आकर दोनों को इश्क लड़ाने की सूझी है। शरम भी नहीं आती। मम्मी तो अभी से पापा को मरा हुआ समझने लगी हैं।

इला खड़ी हो गई। एकदम झपटकर उसने ताराचंद 'सहृदय' के हाथ से पत्र छीन लिया।

"तुम तो बेकार नाराज होते रहते हो।" कहकर वह मुड़ी और पत्र को मुट्ठी में दबाये चली गयी।

ताराचंद 'सहृदय' अब वहां अकेला रह गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? सहसा उठा वह, दौड़ता हुआ-सा सामने की दीवार के पास पहुंचा और सिर टकरा दिया। तीन-चार टक्करों के बाद उसका माथा सुन्न पड़ गया। आंखों में पानी भर आया।

वह धम्म से जमीन पर बैठ गया और आंखें पोंछने लगा। तभी उसे पास के कमरे से मिली-जुली हंसी सुनाई दी। एक हंसी इला की थी। एक मम्मी की। दोनों फुसफुसाकर बोल रही थीं, और हंस रही थीं।

ताराचंद 'सहृदय' माथा पकड़े बैठा रहा। अचानक उसे खयाल आया कि एक बार फिर वह अपना नाम बदलने की कोशिश कर रहा है। खामखाह का बदलाव ठीक नहीं। उसने सोचा, वह ताराचंद ही रहेगा, सूसरचंद नहीं बनेगा। □

# फासला

फासले को हवा की तरह नापता हुआ मैं न जाने कितनी देर तक भागता रहा। बस, बेकरार भागता रहा।

रिक्शा धुंधले खयाल की भांति यकायक गुम हो गया तो मुझे अपनी मूर्खता पर गुस्सा आया। गुस्से के भीतर एक कोमल-सी चीज बेतरह कांप रही थी।

जिस जगह रुका, वहां सुबह का अहसास कामचलाऊ ठंडेपन के साथ उग रहा था। मैंने तीन-चार सांसें खीज और उतावली में लीं। फिर लगा, अब अगर कुछ भी बोलूंगा तो आवाज फट जायेगी।

छाती में कील ठोंककर एक फटी हुई आवाज तस्वीर की तरह टंग गयी। टांगें ऐंठ रही थीं। शायद उत्तेजना के कारण। कमजोर भी थी, पर मैं उसे ध्यान में नहीं लाना चाहता था। बुरी तरह हांफते हुए मैंने दब्बूपन से, जिसे धोंधा-बसन्तपन भी कहा जा सकता है, चारों ओर देखा। पांवों के नीचे का रास्ता एक संकरी गली में घुसकर दुबला हो गया था। गली के एक तिकोने सिर पर मस्जिद की सफेद इमारत पूरी बुलंदी के साथ सुन्न-सी खड़ी थी।

सन्नाटे की तहों में बिखरी हुई कुछ नामालूम आवाजों को निहायत जरूरी चीजों की भांति टटोलता मैं अपने को ठीक-ठाक करने लगा। आकाश बादामी रंग से भरा हुआ था। रात बादलों ने काफी छींटाकशी की थी और वे अब भी पूरे शोरगुल सहित छाये हुए थे। उनके चचकाने-

पन को देखा जा सकता था। इससे पहले कि कोई दरिद्र भाव मुझे घेरे, मैंने अपनी उपस्थिति का कारण खोज लेना चाहा, पर जल्दी ही मुझे लगा कि मैं सिर्फ जमीन पर थूके हुए पान के धब्बे गिन रहा हूं। पसीने से तर वनियान कंधों पर चिपक गयी थी। पायजामा घुटनों पर फट-कर दो हिस्सों में वंट गया था और उसकी मोहरी सिकुड़कर काफी ऊपर चढ़ आयी थी। मैं अपने पर झेंपने लगा। इसी झेंप के दौरान मुझे उस वत्तख की याद आ गयी जिसे मैंने कल एक वच्ची के हाथ में देखा था। वच्ची मिट्टी की वत्तख को लेकर हंस रही थी और उसकी हंसी मुझे आश्वस्त कर रही थी कि अभी वह उम्र में छोटी है। छोटी और वेवकूफ, पर जाने क्यों मुझे उसकी वेवकूफी से ईर्ष्या या शायद चिढ़ होने लगी। मैं रामलीला के रावण की तरह हः हः हः करके हंसा और उसकी वत्तख तोड़कर भाग पड़ा। भागते-भागते मुझे लगा कि वच्ची मेरा पीछा नहीं करेगी। मैं रुक गया और जुकाम से दुःखी आदमी की तरह वार-वार सिनकता हुआ छींकने लगा। इस तरह छींकना अपनी लज्जा को ढंकना था, पर मैं इसके सिवा और कुछ कर नहीं सकता था!

लम्वी, मटमैली, दाढ़ी वाले एक वुजुर्ग को मैंने उल्लासाना अन्दाज में प्रकट होते हुए देखा। वे गली के टूटे हुए वातावरण में एक सावुत चीज की तरह प्रकट हो रहे थे और दूर से ही अप्रिय लग रहे थे! अप्रिय और अशोभनीय। अशोभनीय इस अर्थ में कि वे झुकी हुई कमर को ठेलते हुए चल रहे थे और जगह-जगह रुककर अपने वे-दांत मुंह को तल्लीनतापूर्वक चलाने लगते थे।

"किसी को ढूंढ रहे हो, वेटा?"

"हां।" मेरी स्वीकृति वहुत रूखी और अपमानपूर्ण थी।

"किसको?"

मैंने मुंह फेर लिया। वे चले गये। पीछे से मैंने देखा, उनकी गोल टोपी पर एक फुनगी तितली की तरह चिपकी हुई थी।

मैं एक परिवार-नियोजन का पोस्टर पढ़ने लगा। जिसमें लाल तिकोन के नीचे छपे हुए अक्षर पानी में डूवे-से लग रहे थे। पानी में

देता, पर मुझे लगता कि अम्मी हौसले वाली औरत है, उसने आत्महत्या नहीं की होगी।

मैं दालान में रद्दी अखवारों के टुकड़े पढ़ता रहता और अम्मी के वारे में अव्यवस्थित ढंग से सोचने लगता। धीरे-धीरे दालान मेरे लिए छोटा होने लगा और मैं एक ऐसी उम्र में पहुंच गया, जहां अम्मी सिर्फ एक धुंधलका थी—धुंधलका नहीं तो एक वेस्वाद स्मृति। मैं अक्सर उस स्मृति को फोड़ने की कोशिश करता। जव वह नहीं फूटती तो अन्दर-ही-अन्दर एक ऐसा घोल तैयार करने लगता जो तेजाव की तरह सुलग उठता और अम्मी के रूप को विकृत कर देता।

"तुम यहां क्यों खड़े हो ?"

मैं इस आवाज से चौंका। अम्मी !

वह लौटकर आयी थी। सुन्न गली में वह मेरे सामने खड़ी थी। पर, मैं उसे कुछ क्षण अपलक घूरता रहा। होंठों तक कुछ छोटे-मोटे वाक्य आये थे। फिर वे क्षीण होकर विखर गये। शक्ल-सूरत से वह अम्मी ही थी। उस जैसी। पर वह अपनी सुंदरता खो चुकी थी। चेहरे की खाल सूखकर पेड़ की छाल हो गयी थी और आंखों के इर्द-गिर्द सूजन के नक्शे थे। सुंदरता खोकर वह मेरी पहचान से दूर पड़ चुकी थी। मैंने उसे नजदीक खींचना चाहा। हाय, वह कितनी खूबसूरत थी !

उसने मुझे अपने वक्ष से सटा लिया। मुझे लगा, वह मेरे वक्ष से सट गयी है, क्योंकि मैं अपने कद को उससे वड़ा पा रहा था और उसका खिचड़ी वालों वाला सिर मेरे कंधे से जुड़ा हुआ कांप रहा था। उसके शरीर में उमस और भाप थी। मैं उसे सहन नहीं कर पा रहा था। छिः मैं अपनी मां को भी सहन नहीं कर पा रहा हूं। लेकिन तत्काल मुझे लगा, मैं एक साधारण स्त्री को नहीं सह पा रहा हूं। मेरी मां असाधारण थी।

"तुम रो रहे हो ?" उसने झिड़ककर कहा। मैं ग्लानि से भर उठा। क्या मैं रो रहा था ? मैंने अपनी आंखें पोंछीं। वे सचमुच गीली थीं। मुझे लगा अव मैं ऊपर नहीं उठ पाऊंगा। रोकर मैंने अपने को छोटा कर लिया है। अव यह स्त्री नहीं जान पाएगी कि मैं एक उन्नीस

साल का समझदार लड़का हूं और अपने शरीर में मैंने अपना रंग पैदा कर लिया है। वह रंग मुझे दूसरों से अलग करता है।

अपने नजदीक खड़े अधेड़ व्यक्ति से मां ने थैला मागा। थैला सुतलियो से बुना हुआ था। उसमें अमरूद थे।

"खाओ। तुम्हें भूख लगी होगी।"

वह बुदबुदायी। उसके शब्दों मे दया थी। मैं जमीन मे गड़ गया। एक स्त्री मुझे भूखा समझ रही थी। भूखा और फटेहाल। पर मैंने अमरूद ले लिया और खाने लगा। भूख पेट में थी, मैं उस से इनकार नही कर सकता था।

"खट्टा तो नही है?"

उस अधेड व्यक्ति ने अचानक मेरी पीठ पर हाथ रख दिया। पीठ का वह हिस्सा गर्म हो उठा। मैंने फुंसियों और झुर्रियो से भरे हुए उसके चहरे को घूर दिया। वह अपनी मूछों के कोने चबा रहा था। मा से मैंने उसके बारे मे पूछना चाहा, पर वह बहुत फूहड़ ढंग से खड़ी हुई हम दोनो को तोल रही थी—अपनी शात दृष्टि मे। मुझे और उस अधेड़ को। मैंने अधखाया अमरूद नाली मे फेंक दिया और उसे बहते हुए देखता रहा।

"अच्छा लड़का है।"

अधेड़ ने कहा। मा के चेहरे पर इस प्रशसा से गर्व पुत गया। मेरी इच्छा हुई कि उससे कहू, अपना चेहरा ढक लो। भद्दा लग रहा है।

सहसा याद आया कि अब्बा ने मुझे डबलरोटी का पैकेट लाने के लिए भेजा है और वे नाश्ते के लिए मेरा इतजार कर रहे होगे। हो सकता है, वे अब्दुल्ला बेकरी वाले के यहा खुद चले गये हो। मैं उतावला और अनिश्चित्त हो उठा। अपने भीतर के एक घिनौने दृश्य मे मैंने मा के दोनों ओर अब्बा और उस अधेड व्यक्ति को खडा किया। मा बीच में तनी हुई खडी थी और उसके चेहरे पर सुदरता लौटने लगी थी। तब मैंने उस दृश्य मे अपने को शामिल किया और इतने फ़ासले पर खडा हो गया, जहा से वे तीनो मुझे रूपहीन दिखलायी देने लगे। अब मैं उन्हें पहचानने से इनकार कर सकता था। ☐

# संकट

तीनों एक लंबी सीट पर सटकर बैठे हुए थे, और तीव्र उत्तेजना में उनके चेहरे गर्म लोहे की भांति तमतमा रहे थे।

वह उन्हें गौर से देखने लगा। देखने में उसे सुविधा भी थी क्योंकि वे ठीक सामने ही थे। अचानक उसे लगा कि हाथ बढ़ाकर यदि वह उनमें से किसी चेहरे को छू भर दे तो उस की अंगुलियां जल जायेंगी। यह अहसास उसे नये सिरे से सोचने का सुझाव दे गया और वह उनकी बातें सुनने की कोशिश करने लगा।

बस बुरी तरह भरभरा रही थी। इतने धक्के लग रहे थे कि लोगों की आवाजें फूटकर उड़ने लगतीं, फिर इधर-उधर गिरकर ढेर हो जातीं। वे बहस में उलझे हुए थे। पानी के बुलबुलों की भांति शब्द उनके होंठों से छूटते और शोर में गुम हो जाते।

कुछ साफ नहीं सुनाई पड़ रहा था। यह न सुन पाने की विवशता एक उत्सुक भाव के साथ उसके अंदर ऐंठने लगी।

तभी एक ने दनदनाते हुए स्वर में कहा "लानत है!" और अपनी छोटी-छोटी मूंछों के कोने खींचने लगा। दो ने उस की बात के समर्थन में होंठ चबाये और तीन तालू से चिपके थूक को जबरन निगलता हुआ-सा बोला, "उन सबको गोली से उड़ा देना चाहिये।"

वह सन्नाटे में आ गया। कान खड़े हो गये आगे की बात पूरी तरह जानने के लिए। ये तीनों किस पर गुस्सा कर रहे हैं? किस को

और खूब बिगड़ते थे। मंत्रिमंडलों से लेकर नगरपालिकाओं तक के सदस्यों की सूची उन्हें कंठस्थ रहती थी। जब-तब वे छोटे-बड़ों पर रौब गांठ देते।···दफ्तर में उससे कोई नहीं पूछता कि अमेरिका का विदेश-मंत्री कौन है। सब बाबू एक ही चक्की का आटा खाते हैं और फाइलों पर जमी धूल पोंछ-पोंछकर प्रमोशन की प्रतीक्षा करते हैं।

एक कमजोर, पीला आसमान था, जो दुकानों की तिरछी छतों, गुंबजों और चमकीले साइनबोर्डों के बीच फंस कर कागज की तरह फड़-फड़ा रहा था।

'नीरोज' पर बस में भीड़ भर गयी और वह अपनी सीट पर सिकुड़ गया। एक बूढ़े की आधी बांह उसके कंधे पर टिकी हुई थी। एक और तीन किसी नयी फिल्म की चर्चा में उलझ गए थे और दो रूमाल से ऐनक के शीशे मांज रहा था। चौधरी होटल आया तो वे हड़बड़ाकर उठे और लोगों को धकियाते-मसोसते नीचे उतर गये।

उसने देखा, फुटपाथ पर दो आगे-आगे चल रहा था, उसके पीछे तीन और उसकी बगल में कुछ हटकर एक—भागते हुए-से, जैसे चोरी करके आ रहे हों।

बस रुक गयी थी—कंडक्टर यूनिवर्सिटी की लड़कियों की चख-चख में फंस गया था, जब तक वह घंटी नहीं देगा, यह बस इसी तरह खड़ी-खड़ी बदबू फेंकती रहेगी।

उसने बचैनी से इधर-उधर निगाह घुमाई। मन उखड़ा-उखड़ा हो रहा था।

"पेइ···प···र्र···र्र···र्र···"

"यूनियन के बड़े-बड़े नेताओं में फू-ऊ-ट···"

"धारा एक सौ···चम्मालीस···गिरफ्तारियां···"

"वि···ऐत···नाम में···"

खिड़की के पास खड़ा छोकरा चीख रहा था। उसकी चिल्लाहट कभी दबी-दबी, कभी पटाखे की तरह विस्फोट करती हुई।

वह कुछ क्षण अन्यमनस्क-सा उसकी तीखी-चुभती पुकारें सुनता रहा। फिर उसने पेंट की जेब से पैसे निकाले और झपटकर अखबार

ले लिया। अखबार हाथ में लेते ही उसने महसूस किया, जैसे कि वह औसत दर्जे से ऊपर उठ गया है। किंतु, तुरंत ही यह भाव भी मन मे हुचमचाने लगा कि उससे कोई भारी गलती हो गई है। जल्दवाजी अच्छी नही होती।

खिन्नतापूर्वक वह मोटे-मोटे शीर्षकों को पढ़ने लगा। बिल्कुल मजा नही आया। फिर उसने खबरें टटोलने की कोशिश की। दिल किसी अंधे कुएं में डूबता जा रहा था।

मुखपृष्ठ पर बीचोबीच बातचीत करते हुए तीन आदमियों का एक बड़ा चित्र था। नेता लोग होगे। उसे एक, दो और तीन का खयाल आया और धुधले ढंग से वह उन के चेहरों को चित्र के तीन आदमियो पर चिपकाने लगा। ऐसा करते हुए उसकी आखें सिकुड गई। भौंहों मे बल पड गये। होंठों पर शरारत वाली मुस्कराहट खिच आई। काफी देर तक वह इस कार्यवाही का आनद उठाता रहा।

सागानेरी गेट निकल गया तो उसने आगे के पन्ने पलटे। स्वास्थ्य-संबंधी प्रश्नोत्तरी मे एक जगह उसे इतनी जोर की हसी आयी कि पास में खड़ी महिला छिटककर दूर हो गयी। खेल-कूद वाला पेज भी बोर था। बोर और सुस्त, कही गर्मी नही।

और पृष्ठ उसके लिए व्यर्थ थे। उसने अखबार मोडकर बगल मे दबा लिया। फिर महसूस किया कि बगलें पसीने से तर है और अखबार कमीज से चिपक गया है।

गोपालजी के रास्ते पर उतरते ही उसने भूखी नजरो से चारो ओर देखा। नुक्कड़ के लेटर-बाक्स के पास एक लडकी गभीर मुद्रा में खडी थी और लिफाफा अदर खिसकाने से पहले उसपर लिखा पता [illegible] रही थी।

वह कायदे से मुस्कराया। एक रेडी वाले को रोककर [illegible] मूगफलिया ली और अखबार मे डालकर खाने लगा। [illegible] कुतर रहे थे। इतवार को भाभी खाना बनाने मे जानबूझ कर विलब कर देती है।

भाई दरवाजे पर ही मिल गए। हाथ मे थैला थामे। कमी

बटन बंद करते हुए।

उसने पूछा, "कहीं जा रहे हैं क्या ?" बोले, "यहीं थोड़ी दूर। सब्जी ले आता हूं।"

मूंगफलियां खा चुकने से उसकी बेचैनी कम हो गयी थी और वह इस समय स्वयं को परम संतुष्ट पा रहा था।

"यह अखबार आज का है क्या ?" सहसा भाई ने पूछ लिया। उनकी आंखों में, आवाज में संदेह था।

उसने कहा, 'हां,' और अखबार उनकी तरफ बढ़ा दिया, प्रसन्नभाव से। कुतूहल भी था कि देखें, अब क्या होता है ?

भाई ने थैला उसे पकड़ा दिया और वहीं झुककर पन्ने खड़खड़ाने लगे। एक अतिरिक्त समझदारी से उसने भीतर झांका। भाभी कहीं नहीं दिखलाई दी। नहा रही होगी।

"हुम्म !" भाई के फेफड़ों में जमीं सांस झटके से बाहर आ गयी और वे होंठ चबाने लगे।

वह आतंकित हो उठा। उनके माथे पर क्षण-क्षण बनती-बिगड़ती छायाओं को देखकर। चुपचाप सब्जी लाने चल दिया। थैले को मुट्ठियों में कसे हुए।

आठ-दस कदम की दूरी से उसने मुड़ कर देखा, भाई का चेहरा तमतमा रहा था, और वे अखबार के खोखल में धंसे हुए थे।

वह जल्दी-जल्दी चलने लगा। लगभग दौड़ता हुआ। रास्ते-भर उसने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। 